हिन्दी

शीराज़ा

जे. एण्ड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

द्विमासिक

हिन्दी

फरवरी–मार्च, 2007

प्रमुख संपादक

डॉ. रफ़ीक़ मसूदी

संपादक

नीरू शर्मा

जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 February – March, 2007
(Hindi)

वर्ष : 42 अंक : 6 पूर्णांक : 181

★ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वेजिज़ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू–180 001

पत्र-व्यवहार : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू–180 001; दूरभाष : (0191)-2577643, 2579576

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालंधर, पंजाब–144 004
दूरभाष : (0181)–5087310

शुल्क दर : एक प्रति 10 रुपये; वार्षिक 50 रुपये

संपादकीय

आज चारों ओर आपाधापी फैली हुई है। इस आपाधापी के दौर में सभी अपनी ही धुन में मस्त हैं और अपनी-अपनी स्वार्थपूर्ति में लगे हुए हैं, जिससे मानव के नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। उसे इनसे सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है कि एक स्वच्छ और सशक्त समाज की स्थापना की जाए और उसके लिए जरूरी है कि हमारा साहित्य समृद्ध हो। क्योंकि समृद्ध साहित्य ही समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करता है।

जैसा कि आप सभी जानते ही हैं कि साहित्य ही मानव जीवन का मेरुदंड है जो जीवन की संवेदनाओं से अलग नहीं रह सकता, यदि वह संवेदनाओं से रहित है तो वह निरर्थक है।

इंद्रियों के द्वारा जो जीवन ग्राह्य है वह साहित्य का विषय है। सुख इन्द्रियों का विषय है, जो जीवनगत परिस्थितियों के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। कभी-कभी बिजली की तरह कौंध कर दुःख के काले बादलों में विलीन हो जाता है और कभी तितलियों की तरह एक क्षण फूलों पर बैठ कर उड़ जाता है। उसमें वस्तु का मोह, परिस्थितियों की सीमा और व्यक्ति का बंधन है। लेकिन आनंद इन्द्रियों का नहीं वरन अंतःकरण का विषय है, जो आशा रूपी लता में लगे फूल की भांति कभी नहीं मुरझाता। कांटों वाली डाल पर लगे गुलाब की तरह अपनी अनुपम शोभा और सुरभि बिखेरता हुआ खिला रहता है। तब यह आनंद वस्तु की सीमा को पार कर असीम हो जाता है।

अनुभूतियां मानव हृदय में सहजता से पनपती हैं, उनमें से कुछ ऐसी अनुभूतियां हैं जो प्रज्ञात्मक हैं, जो किसी कल्पना या भावना से नहीं समझाई जा सकतीं और कुछ इतनी गहरी होती हैं कि भाषा भी पूर्णतया उन्हें नहीं पकड़ सकती। इसीलिए साहित्य-सृजन में रस को माध्यम बनाया गया है। रस लोकोत्तर अनुभूति है। इससे हमारा अंतर्जगत सभी भौतिक प्रतिबंधों को पार कर जाता है। हम जीवन के इन सभी अनुभवों को साहित्य में समेट लेते हैं। इसमें विशेष रूप में भव्य भावनाएं और कल्पनाएं अनेकों रूप धारण कर प्रकाशपुंज की भांति जगमगाने लगतीं हैं और जीवन आकाशगंगा की तरह शून्य में भी सौंदर्य की सृष्टि करता है। इसी में आनंद के प्रतीक रस की सृष्टि होती है और सशक्त साहित्य का सृजन होता है। वह साहित्य जीवन के अंतर्जगत और बाह्यजगत दोनों को स्पर्श करता है।

नीरू शर्मा

इस अंक में

❖ **आलेख**

❖ **संस्मरण**

❖ **दोहे/कविता**

❖ **कहानी**

❖ **कविता**

❖ **नया हस्ताक्षर (नाटक)**

❖ **भाषांतर**

❖ **समीक्षा**

व्यक्तित्व की खोज में नारी

❑ डॉ॰ सत्यपाल श्रीवत्स *

भारतीय संस्कृति की मर्यादा के अनुसार नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी है। विवाह के अनन्तर पति और पत्नी दोनों का व्यक्तित्व एक-दूसरे के साथ मिल कर इस प्रकार एक हो जाता है कि उसकी पृथक् कल्पना ही नहीं की जा सकती। उस समय वह दम्पति कहलाते हैं। पतिव्रता धर्म और एक-पत्नी व्रत की कल्पना भी भारतीय-संस्कृति की इसी मर्यादा का परिणाम थी। यही कारण था कि प्राचीन भारतीय पत्नी अलग से अपना कोई व्यक्तित्व या अस्तित्व नहीं रखती थी। वह अपने-आप को पुरुष की दासी या समर्पिता समझती थी परन्तु इधर पश्चिम और भौतिकवाद के प्रभाव से तथा पुरुष की अपनी त्रुटियों से इस मर्यादा में दरारें पड़ने लगी हैं। नारी और नर के उस पुराने सम्बन्ध की पवित्रता के सामने एक चुनौती आ गई है। इसका परिणाम यह हुआ कि नारी अपने भीतर कुण्ठा, घुटन, क्षोभ और उपेक्षा का भाव अनुभव करने लगी है। इसका प्रभाव समकालीन साहित्य पर भी पड़ा और भारतीय वातावरण में निर्मित हिन्दी कथा-साहित्य भी इससे अछूता न रह सका।

हम देखते हैं कि अतीत की नारी के समान आज की नारी में हर प्रकार के वातावरण में अपने-आप को व्यवस्थित करने की क्षमतां नहीं है, यानी वह अब परिस्थितियों की दास नहीं है। न ही वह अब पुरुष की दासी और समर्पिता है वरन् वह उसकी मित्र या सहयोगी है। उसे जो कुछ पसन्द नहीं है उसके विरुद्ध उसमें आक्रोश है, क्षोभ है, एक विद्रोह है, पर दुःखद स्थिति तो यह है कि उसने स्वतन्त्रता की खोज के नाम पर भारतीय परम्परा के अनुसार स्थापित जीवन के शाश्वत मूल्यों को ही तिलाञ्जलि देने का निश्चय कर लिया है। उसके विरुद्ध वह विद्रोह कर उठती है। वह अब अपने व्यक्तित्व को पुरुष के व्यक्तित्व में समा जाने की अनुमति नहीं देती है। अब वह पत्नी होकर भी अपना पृथक् व्यक्तित्व बनाए रखने के लिए आतुर है। पुरुष के साथ पत्नी रूप में रहती हुई भी वह अपने व्यक्तित्व का पृथक् अस्तित्व किस प्रकार बनाए रखे, वर्तमान नारी के सम्मुख यह एक जटिल समस्या है या गम्भीर चुनौती है। दाम्पत्य जीवन की प्राचीन मर्यादाएं जब टूट रही हों और नवीन उनका स्थान ग्रहण कर रही हों तो ऐसे संक्रमण काल में-वर्तमान नारी इस समस्या का समाधान खोजने की चिंता में है। इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि महात्मा गाँधी के राजनैतिक क्षितिज पर उदय होने के साथ ही राजनीति के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी जब नवोत्थान के स्वर गूँजने लगे तो घर की चारदीवारी के भीतर एक प्रकार से कैद केवल पत्नी, मां, पुत्री, बहन आदि के दायरे में ही सीमित नारी की भी आँखें खुलीं। वह सोचने लगी कि उसकी भी अपनी कुछ मान्यताएं हैं और समाज के प्रति उसके भी कुछ दायित्व हैं। परिणामतः उसकी धमनियों में जागृति का रक्त स्पन्दन करने लगा। उसकी झलक तत्कालीन साहित्य में स्पष्ट होकर उभरने लगी।

---

* *47/5 हाऊसिंग कालोनी, रूपनगर जम्मू*

हिन्दी साहित्य में मुंशी प्रेमचन्द नवचेतना तथा नए युग का सन्देश लेकर आए, इसीलिए उनकी कहानियों में हम अधिकांश नारी पात्रों में पुरानी परम्पराओं से ऊब तथा खीज देखते हैं तथा नए विचारों के प्रति आतुरता। मुन्शी प्रेमचन्द से लेकर राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, कृष्णा सोवती और निर्मल वर्मा आदि सभी कहानीकारों के सम्पूर्ण कथा-साहित्य में हम नारी को इसी स्थिति के साथ दो-चार होते देखते हैं।

मुन्शी प्रेमचन्द की कहानी 'कुसुम' की नायिका पूर्णतया भारतीय परम्परा में पली नारी है। वह विवाह के बाद पति के व्यक्तित्व में अपना व्यक्तित्व खो देती है, परन्तु उत्तर में जब उसे पति की ओर से निरन्तर उपेक्षा और घृणा ही मिलती है तो उसका व्यक्तित्व स्वतन्त्र अस्तित्व में आने के लिए तड़प उठता है और इसलिए वह मायके से अपने पति को अन्तिम पत्र लिख कहती है- ''आपके दिए गहने और कपड़े अब मेरे किसी काम के नहीं। इन्हें अपने पास रखने का मुझे कोई अधिकार नहीं। आप जिस समय चाहें, मंगवा लें। मैंने इन्हें एक पिटारी में बन्द करके अलग रख दिया है। इसकी सूची भी वहीं रखी हुई है, मिला लीजिएगा।''[1]

जब उसके पति की यह इच्छा सबके सम्मुख प्रकट हो जाती है कि कुसुम के पिता ने उसे विलायत जाने का खर्च नहीं दिया, इसीलिए वह कुसुम के प्रति बेरुखी अपनाए हुए है तो उसके पिता उसे पहली किश्त के रूप में एक हजार रुपये भेजने के लिए तैयार भी हो जाते हैं, परन्तु कुसुम उसका खुलकर विरोध करती है-''यह उसी तरह की डाकाजनी है जैसी बदमाश लोग किया करते हैं। किसी आदमी को पकड़कर ले गए और उसके घरवालों से उसकी मुक्ति के तौर पर अच्छी रकम ऐंठ ली।''[2]

जब कुसुम की मां उसे समझाते हुए कहती है कि पति देवता स्वरूप होता है। जब वह प्रसन्न हुआ है तो उसे अब फिर मत नाराज़ करो। तब कुसुम क्रोध में आकर उत्तर देती है- ''ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा है। जो आदमी इतना स्वार्थी, इतना दम्भी, इतना नीच है उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा। मैं कहे देती हूं, वहां रुपये गए तो मैं ज़हर खा लूंगी। इसे दिल्लगी न समझना। में ऐसे आदमी का मुंह भी नहीं देखना चाहती। दादा से कह देना और तुम्हें डर लगता है तो मैं खुद कह दूं। मैंने स्वतन्त्र रहने का निश्चय कर लिया है।''[3] और इसके बाद कुसुम अपने व्यक्तित्व की स्वतन्त्र सत्ता कायम कर लेती है।

प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी ''वेश्या'' की नायिका माधुरी यद्यपि एक वेश्या के रूप में धनिक लोगों से प्रतिदिन लाखों रुपए ऐंठती रहती है परन्तु उसके भीतर कुलीन नारी का व्यक्तित्व अभी भी जीवित है, परन्तु पंगु रूप में, जो चलना चाहता हुआ भी चल नहीं पाता है। वास्तव में उसे वेश्या जीवन से घृणा है, इसीलिए वह दयाकृष्ण से कहती है-''तुम से हाथ जोड़ कर कहती हूं कि यहां से किसी ऐसी जगह चले चलो जहां हमें कोई न जानता हो। वहां शान्ति के साथ पड़े रहेंगे। मैं तुम्हारे साथ सब कुछ झेलने को तैयार हूं।''[4]

---

1. *मानसरोवर, पृ० 19*
2. *मानसरोवर, पृ० 24*
3. *मानसरोवर, पृ० 24*
4. *मानसरोवर, पृ० 41*

स्पष्ट है कि वह दयाकृष्ण का संबल पाकर कुलवधु बनना चाहती है। इसीलिए वह उसके मन की डांवाडोल स्थिति को भांप कर उसे फिर झंझोट कर कहती है–"मैं तुमसे पूछती हूँ, तुम मुझे अपनी शरण में लेने को तैयार हो? मैं सोने के महल को ठुकरा दूंगी, लेकिन इसके बदले मुझे किसी हरे वृक्ष की छांह तो मिलनी चाहिए।"[1]

जब दयाकृष्ण उसे फिर भी अपनाने में आनाकानी करता है तो वह कहती है–"तुम वेश्या में स्त्रीत्व का होना सम्भव से दूर समझते हो? तुम इस की कल्पना ही नहीं कर सकते कि वह क्यों अपने प्रेम में स्थिर नहीं होती? तुम नहीं जानते कि प्रेम के लिए उसके मन में कितनी व्याकुलता होती है और जब वह सौभाग्य से उसे पा जाती है तो किस तरह प्राणों की भांति उसे संचित रखती है।"[2]

उसके इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि वेश्या में भी एक सन्नारी का व्यक्तित्व प्राप्त करने की कितनी तीव्र तड़प होती है। और जब उसे पुरुष अपनाने से झिझकता है तथा उस पर पतिता का कलंक लगा देता है, तो उसका मन पुरुष के प्रति घृणा और खीज से ही नहीं भर जाता, बल्कि विद्रोह भी कर उठता है। माधुरी के ये शब्द इस तथ्य के ज्वलन्त प्रमाण हैं–"पुरुष इतना निर्लज्ज है कि वेश्या की दुरावस्था से अपनी वासना तृप्त करता है और इसके साथ ही इतना निर्दयी कि उसके माथे पर पतिता का कलंक लगा कर उसे उसी दुरावस्था में मरते देखना चाहता है। क्या वह नारी नहीं है? क्या नारीत्व के पवित्र मन्दिर में उसका स्थान नहीं?"[3]

माधुरी के ये उदात्त विचार स्वयं इस बात के साक्षी हैं कि नारी अपने खोए व्यक्तित्व को फिर से पाना चाहती है, परन्तु पुरुष उसका साथ नहीं देता है और दूसरे शब्दों में वही इसमें सबसे बड़ा बाधक है।

मुन्शी प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी में मिस पद्मा एक सफल वकील है। इस नाते उसे विद्या, धन, सम्मान सभी कुछ प्राप्त है। स्वतन्त्र यौन व्यवहार में विश्वास रखने के कारण वह अपनी काम–वासना की पूर्ति भी अपनी इच्छानुसार कर लेती है, परन्तु वह फिर भी अपने चारों ओर तथा भीतर किसी अखरने वाले अभाव तथा खालीपन की असह्य पीड़ा से पीड़ित है। वह अभाव है एक सपत्नी तथा मां के व्यक्तित्व का, जिसे प्राप्त करने के लिए वह सदा परेशान रहती है। इसीलिए वह प्रो० प्रसाद को आत्म–समर्पण कर देती है, परन्तु प्रसाद बेवफा निकलता है जिससे पद्मा का जीवन पुत्र प्राप्त करने के बाद भी दुःखी हो जाता है। जब उसे पता चलता है कि प्रसाद बैंक से पद्मा द्वारा जमा की हुई एकमात्र पूंजी बीस हज़ार रुपए येन–केन प्रकारेण निकलवा कर अपने विद्यालय की किसी बालिका के साथ इंग्लैंड चला गया है तो वह प्रसाद का चित्र तोड़ कर पैरों तले रौंद देती है और उसके सामान को आग लगा देती है। उस दिन के बाद उसका मन बहुत दुःखी रहने लगता है। जब कभी वह अपने बंगले की खिड़की से नीचे सड़क पर अपने–अपने बच्चों को अंगुली लगाकर हंसते–खेलते जोड़ों को सैर करते देखती है तो उसकी छाती पर मानो हथौड़े की चोटें लगती हुई

---

1. *मानसरोवर, पृ० 49*
2. *मानसरोवर, पृ० 50*
3. *मानसरोवर, पृ० 54*

प्रतीत होती हैं। इधर वर्तमान में बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में तथा परिश्रम के बढ़ते प्रभाव से कुछ महिला कथा-लेखिकाओं ने भी अपना दृष्टिकोण नारी स्वतन्त्रता की वकालत करने के लिए पूर्णतया बदल लिया है। महिला कलाकारों ने विवाह-संस्था को एक प्रकार से व्यर्थ ही सिद्धकर दिया हुआ है। उषा प्रियंवदा की कहानी 'प्रतिध्वनियाँ' की नायिका पति से तलाक लेकर एक प्रकार से मुक्ति का अनुभव करके कहती है-''एक मीनिंग लैस्स-सी रस्मों ने बाँध लिया है।''[1]

कुलभूषण की कहानी ''पहली सीढ़ी'' की नायिका नीरा को घी के व्यापार के मैनेजर की पत्नी के व्यक्तित्व की अपेक्षा एक्ट्रेस का व्यक्तिव कहीं अधिक प्रिय है। इसीलिए वह अपने पति को मैनेजर के पद से त्यागपत्र दिलवा कर उक्त व्यक्तित्व की खोज में बम्बई पहुँच जाती है। वहां महालक्ष्मी फिल्म कम्पनी के डायरेक्टर कान्तिभाई से उसका वास्ता पड़ता है। उसके सौन्दर्य तथा तड़क-भड़क के कारण कान्तिभाई उसे अपने जाल में फंसाने के चक्कर में पड़ जाता है। मैट्रो में फिल्म देखते हुए तथा एस्टोरिया में भोजन करते समय कान्तिभाई उसके साथ जो कमीनी हरकतें करता है, उनसे वह मन-ही-मन खीज उठती है। उसका मन कहता है कि वहां से भाग जाए और फिर कान्तिभाई का मुंह भी न देखे, परन्तु सिने तारिका बनने का भूत उसके सिर पर अभी भी सवार है, इसीलिए तो वह बदमाश औरत की भूमिका तक निभाने के लिए भी तैयार हो जाती है। रह-रह कर अपने पति की याद उसे अवश्य परेशान करती है, परन्तु वह मन-ही मन निश्चय कर लेती है-''एक बार मुझे काम मिलेगा तो वह उसे कभी भी नाराज़ नहीं करेगी।''[2]

घर पहुंचने पर उसके पति ने उसे कान्तिभाई के साथ घूमने के अपराध में बुरी तरह पीटा। तब वह उससे झूठा वायदा करती है कि भविष्य में वह कान्तिभाई के पास कभी नहीं जाएगी, परन्तु उसके अन्तर्मन से निरन्तर यह ध्वनि उठती रहती है कि वह अवश्य एक्ट्रेस बनेगी और बदमाश औरत का रोल भी करेगी। जब लोग उसे पर्दे पर देख कर उसकी प्रशंसा करेंगे और उसके आटोग्राफ लेने के लिए लालायित होंगे तब उसका अन्तर्मन फूला नहीं समाएगा। अतः वहां तक पहुंचने के लिए वह अवश्य संघर्षरत रहेगी।

इन्दुबाली की कहानी ''मैं दूर से देखा करती हूँ'' की नायिका अपने पति से असीम प्यार पाने के बाद जब पति के व्यभिचारी हो जाने से उपेक्षिता हो जाती है तो उसे अपनी एकमात्र सन्तान अलका के होते हुए भी एक तीखा अभाव खटकता रहता है। पति के शराबी और व्यभिचारी हो जाने से वह अपने पत्नी के व्यक्तित्व में एक खालीपन, टूटन तथा घुटन महसूस करती है। उसे भीतर से कुछ कचोटता-सा महसूस होता है, जिससे उसका व्यक्तित्व अस्तित्व में आने के लिए बुरी तरह कराह उठता है। वह दीपक के बिखरते व्यक्तित्व को सम्भालने का भरसक प्रयत्न करती है परन्तु उसे असफलता ही मिलती है। परिणामतः उसके भीतर विद्रोह और हिंसा की तीव्र ज्वाला भड़क उठती है और वह घर की चारदीवारी से निकल कर बाहर आ जाती है। वह सोचती है-''मैं अपना अलभ्य प्यार देकर दासी बनना स्वीकार न कर सकी। मैं घर से बाहर निकल आई। दिशा ज्ञान भूल गई। कभी पहले निकली जो न थी। नवयुवक हर सांस में मेरी तरफ देखते। मेरे अद्वितीय यौवन को निहारते। मैं सब समझती और मन में गर्वित हो जाती। मेरा प्यार मेरे आंचल में एकत्रित

1. *प्रतिध्वनियाँ पृ० 21*
2. *ललक पृ० 27*

होने लगा तो मैं बोझ से कराह उठी। मन में आया क्यों न दीपक की तरह ही जी भर कर लुटा दूं। देखूं कैसा आनन्द है इसमें? प्रथम मौका मिलते ही मैं लुट भी गई। वह दीपक का ही एक मित्र था।.... एक दिन बदले की भावना ने मेरा सब कुछ भस्म कर दिया...।''[1]

इसके बाद वह अपने व्यक्तित्व को खण्ड-खण्ड हुआ महसूस करती है। कुछ समय के बाद दीपक की चेतना लौटते ही वह उसे फिर से अपनाने के लिए तैयार हो जाती है, परन्तु वह उससे दूर भागने की कोशिश करता है। यहां तक कि अब वह अलका से भी डरने लगती है। वह सोचती है-''मैं अपने अन्तर की नारी को क्षमा न कर सकी... न नारी हूं... न पत्नी ... न मां.... न प्रेमिका। सब का रूप देखा। सब का अपना-अपना स्वाद भी था, पर किसी में स्थिरता मैं बना न पाई। अपने ही हाथों लुट गई थी....पत्नी बनी भूल थी, मां बनी भूल थी, प्रेमिका बनी भूल थी, जीवन ही एक भूल-भुलैयां बन गया है।'' उसके बाद जब उसे बड़ा अकेलापन, बिखरापन, टूटन और इसकी वजह से भीतर-ही-भीतर कुछ कचोटता हुआ महसूस होने लगता है, पर वह पुनः अपने वास्तविक व्यक्तित्व को प्राप्त नहीं कर सकती है।[2]

यशपाल की कहानी 'कम्बल दान' में मिसेज बलूरिया को मिथ्या व्यक्तित्व प्राप्त करने की एक अटल भूख है। मिसेज नरिचा की साड़ियां, ब्लाउज़ तथा उसके सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने की उसकी प्रवृत्ति से वह मन-ही-मन कुढ़ती है। मिसेज नरिचा द्वारा संचालित चलता-फिरता औषधालय और भिक्षुक शरणालय का समाचार सुनकर वह जलभुन जाती है, फिर पति के सुझाव से उसके गोदाम में पड़े बेकार पुराने कम्बलों का दान करने के लिए तैयार हो जाती है। इस प्रकार वह झूठी प्रशंसा और दानवीरता का झूठा व्यक्तित्व प्राप्त करने में सफल हो जाती है।

यशपाल की एक अन्य कहानी ''मंगला'' की नायिका मंगला समाज की एक उपेक्षिता नारी है। मंगला अपने पति के उपेक्षा भाव और उसकी विमाता के क्रूर व्यवहार से इतनी दु:खी हो जाती है कि वह बंसीधर पांडे के हाली शेरूआ के साथ जोगन बनने के लिए बागेसर जाने के लिए तैयार हो जाती है। वह दोनों रात के समय सफर करते हैं और दिन को शेरूआ के चचेरे भाई भोगिया लुहार के घर छुपे रहते हैं। जब वह खा-पीकर रात को आगे चलने के लिए तैयार होते हैं, तो शेरूआ उसे समझाता है कि वह जोगन बनने का अपना इरादा बदल दे और उसके साथ विवाह कर ले। काफी आनाकानी के बाद मंगला शेरूआ के आगे आत्म-समर्पण कर देती है। दो-तीन दिन भोगिया के घर अपनी वैवाहिक जीवन व्यतीत करके शेरूआ मंगला को भोगिया के साथ बागेसर भेजकर खुद अपने घर से अपनी दबी हुई चांदी वगैरा उखाड़ कर लाने के लिए चला जाता है। बागेसर में वे लोग नज़ीर पंसारी के यहां ठहरते हैं। दूसरे दिन सुबह भोगिया भी गायब हो जाता है। रह जाती है नजीर की दया पर बेचारी बेसहारा मंगला! जोगन के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की खोज में रास्ता भूली हुई मंगला। यह पता चलने पर कि मंगला को शेरूआ और भोगिया भगा कर लाए हैं, लोग नज़ीर का घर घेर लेते हैं। मंगला गांव के पटवारी को सौंप दी जाती है। पटवारी उसे सिनेमा दिखाता है और बागों की सैर करवाता है। वह अति दु:खी हो जाती है। परिणाम स्वरूप उसे क्षय रोग हो जाता है। उसे हास्पिटल में पहुँचाया जाता है, परन्तु वहां भी उसके साथ अच्छा

1. *मेरी तीन मौतें, पृ० 40*
2. *मेरी तीन मौतें पृ० 41*

व्यवहार नहीं होता है। उसकी दवाई आदि का उचित प्रबन्ध नहीं किया जाता, परन्तु गुलाब मेहतर और उसकी मां मिसरी उसकी बड़ी सेवा सुश्रूषा करते हैं। उसे विवश होकर उनके हाथ का छुआ भोजन खाना पड़ता है। उधर नज़ीर तथा उसका पुत्र, शेरूआ तथा भोगिया सभी को पुलिस गिरफ्तार कर लेती है, परन्तु अदालत मंगला को मुक्त कर देती है। कहीं भी आश्रय न पाकर वह गुलाब मेहतर के यहां चली जाती है। ऊँची जात वालों को यह सहन नहीं होता है। अत: वे गुलाब मेहतर का घर जलाने के लिए आ धमकते हैं। मामला संगीन हो जाने पर पुलिस तथा मैजिस्ट्रेट भी वहां आ पहुँचते हैं। जब मैजिस्ट्रेट मंगला को वहां से चले जाने का आदेश देता है तो वह पूछती है–''कहां जाऊँ?'' तो मैजिस्ट्रेट वहां एकत्र हुई भीड़ को सम्बोधित करके पूछता है–कोई उसे पत्नी रूप में स्वीकार कर ले। यह सुनकर भीड़ धीरे-धीरे छटने लगती है। यह दृश्य देखकर मैजिस्ट्रेट की आँखों से भी आँसू निकल आते हैं। अन्तत: वह मंगला को विधवाश्रम में चली जाने का आदेश देकर वहां से चला जाता है। मंगला को उसकी इच्छा के विपरीत विधवाश्रम भेज दिया जाता है, परन्तु मंगला दूसरे दिन वहां से भाग जाती है और शीघ्र ही पकड़ी जाने पर अदालत में पेश की जाती है। मैजिस्ट्रेट की आज्ञा से स्वतन्त्र होकर वह फिर गुलाब मेहतर के घर आ जाती है। जात-बिरादरी के कठोर दबाव से मेहतरों की पंचायत गुलाब मेहता को मंगला को घर से निकालने के लिए विवश कर देती है। इस प्रकार बेचारी मंगला को फिर निकाल दिया जाता है। अत: अन्त में वह बेसहारा होकर दर-दर ठोकरों के लिए विवश हो जाती है।

मृदुला गर्ग की कहानी 'तुक' की नायिका विवाह और प्रेम को पूरी तरह असंगत और मूर्खों की बात मानती है। उसकी राय में जो नारियां अपने पतियों को प्यार करती हैं, वे अति मूर्खों की दुनियां में रहती हैं। वह पति और विवाह संस्था दोनों को ही घृणास्पद समझती है।[1] इसी प्रकार उसकी एक अन्य कहानी–''एक और विवाह'' की नायिका व्यवस्थित विवाह में विश्वास नहीं करती।[2]

इन्दुबाली की कहानी 'पालतु' की नायिका ममता पति का प्यार न पाकर पत्नी के व्यक्तित्व से अपने आपको वंचित समझती है। वह अपने आपको पति के घर में वहां पाले हुए खरगोश, बिल्ली, कुत्ते और मिट्ठू के समान महसूस करती है। पति के रूखे व्यवहार के कारण उसे प्रत्येक स्थान पर एक विचित्र सूनापन-सा अनुभव होता है। उसका पति घर से बाहर नौकर, पैसा, गाड़ी, शराब, नारी और दोस्तों-मित्रों में सदा मस्त रहता है, परन्तु घर आते ही वह कुछ नहीं है। वहां वह सर्वथा मौन तथा खोया-खोया ही रहता है। उसकी इस प्रकार की स्थिति ममता के व्यक्तित्व को घुन की तरह तिल-तिल खाती है। ऐसी स्थिति में वह अपनी स्वतन्त्र मन्जिल का चुनाव करने के लिए आतुर हो उठती है। वह दुखी होकर मरना चाहती है, परन्तु उसके अन्तरतम की कोई साध उसे ऐसा भी नहीं करने देती। उसकी उत्कट इच्छा है कि वह एक बार पुन: अपने टूटते व्यक्तित्व को सम्भालने में सक्षम होकर अस्तित्व में आ जाए। एक दिन रात को अपने पालतू खरगोश-खरगोशनी के जोड़े को अपने बच्चों को साथ लेकर और उनके साथ लिपट कर सोया हुआ देखकर उसका तन-बदन सिहर उठता है। उसके भीतर-ही-भीतर कुछ दबा हुआ बाहर आने के लिए छटपटाता है। अत: वह अपने व्यक्तित्व को बचाए रखने के लिए कटिबद्ध हो जाती है। इतने में नशे में धुत उसका पति भी घर पहुँच

---

1. *महिला कलाकार विशेषांक-मृदुलागर्ग-मनोरमा 1998*
2. *एक और विवाह पृ० 98*

जाता है। उसे बिस्तर पर लिटाती हुई ममता महसूस करती है मानो वह अपनी ही लाश को लिटा रही है। उसे प्रतीत होने लगता है कि उसके व्यक्तित्व को चारों ओर से आए प्रश्नों के तीरों ने छलनी कर दिया हुआ है। उसे अपना व्यक्तित्व टूटा हुआ या बिखरा हुआ महसूस होता है।

इन्दुबाली की एक अन्य कहानी ''धरती के अंगारे'' पत्र रूप में लिखी गई है। उपमा के द्वारा कल्पना को लिखे पत्र में आधुनिक नारी के व्यक्तित्व की प्राचीन नारी के व्यक्तित्व के साथ तुलना की गई है कि आज की नारी भूतकाल की नारी से सर्वथा भिन्न है। वह अब पुरुष की सम्पत्ति नहीं है और न ही वह अब मात्र उसके भोग की सामग्री ही है। अब वह न ही दासी है और न ही अन्धविश्वास में रहने वाली पतिव्रता। वह लिखती है-''वह यदि कुछ है तो जीवन साथिन, मित्र, उसके जीवन की पूरक। पुरुष ने प्यार को गौण रूप और वासना को प्रमुखता दे दी है। पुरुष नई-नई कलियों का रस पान करते हैं परन्तु स्त्री के लिए ये सब रस नहीं हैं। वह प्यार को प्रधान मानती है।''[1]

उपमा के अनुसार आज की नारी का व्यक्तित्व पुरुष के व्यक्तित्व से अलग अस्तित्व रखता है और वह उससे किसी भी प्रकार न्यून नहीं है। इसीलिए वह कल्पना को आगे चलकर लिखती है-''समाज के बदलते रूप में स्त्रियां जीवन-संग्राम में भी पुरुष के साथ बराबरी की स्पर्धा करती हैं। वे अब प्यार की सूनी दुकान ही खोल कर नहीं बैठी रहेंगी बल्कि हर क्षेत्र में पुरुष के साथ रहेंगी। वे न भी रखना चाहें तो अकेली ही आगे बढ़ जाएंगी। उन में साहस है, शक्ति है। असम्भव शब्द अब उसका परिचित नहीं है। अबला भाव से दूर, बहुत दूर निकल गई है आज नारी। अब तो पुरुष को उसे पाने के लिए दौड़ लगानी पड़ेगी, जैसे दासता की दौड़ लगाया करती थी नारी।''[2]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि आज की नारी भूतकाल की नारी से सर्वथा भिन्न है। अपने व्यक्तित्व के निर्माण, सम्मान और अस्तित्व के लिए अब वह स्वयं उत्तरदायी है तथा चिन्तित है।

इन्दुबाली की एक अन्य कहानी ''आईने की दुल्हन'' की नायिका मंगला अपने व्यक्तित्व को कर्त्तव्य पालन के मोटे पर्दे के पीछे इतना दबा देती है कि मानो उसका कहीं अस्तित्व ही शेष नहीं है। उसके जीवन की सबसे बड़ी बिडम्बना उसका आजन्म अविवाहित रहने का व्रत है। अपने छोटे भाई के विवाह के अवसर पर जब वह देर से सम्भाल कर रखी हुई साड़ी पर दृष्टि डालती है, तो उसके व्यक्तित्व में जैसे फिर चेतना आ जाती है और वह बाहर आने के लिए कराह उठता है। वह साड़ी पहन लेती है, परन्तु उसके छोटे भाई और बहनें उसका व्यंग्यपूर्ण उपहास उड़ाते हैं और उनकी खिलखिलाहट की गूंज में मंगला के सोए हुए व्यक्तित्व में हलचल जैसी मच जाती है। अब उसकी आत्मा अपने व्यक्तित्व को प्राप्त करने के लिए बड़ी आतुर हो जाती है। अब उसे कर्त्तव्य-पालन मात्र बोझ प्रतीत होने लगता है। उसकी आत्मा अपने वर्तमान के विरुद्ध विद्रोह कर उठती है। उसे अपने चारों ओर एक भयंकर अन्धकार की अनुभूति होने

1. *मेरी तीन मौतें, पृ. 235*
2. *मेरी तीन मौतें, पृ. 237*

लगती है, जिसके आगे आत्म-समर्पण करना वह कदापि उचित नहीं समझती है। उसे लगता है कि उसका व्यक्तित्व धरती, हवा, धूप, आकाश सभी जगह बिखरा हुआ है, जिसे समेट कर एकत्र करने के लिए उसकी आत्मा चीख-चीख कर पुकार रही है-"धरती, हवा, धूप, खुश्बू, आसमान में उसका भी कुछ हिस्सा है।....अब अपने लिए जीना ही होगा।"[1]

वह सोचती है कि उसके व्यक्तित्व का कुछ अंश शेष भी बचा है कि नहीं? इसीलिए वह शीशे के सामने खड़ी होकर अपनी आकृति में अपने व्यक्तित्व की तलाश करती है। अपने चेहरे को इधर-उधर घुमाती है और उसे आभास होने लगता है कि उसने अभी कुंछ भी नहीं खोया है। सभी कुछ उसके पास है। वह अपना जीवन जी सकती है। केवल कर्त्तव्य पालन के भाव ने उसके भीतर एक उपेक्षा वृत्ति उत्पन्न कर दी थी। उसे प्रतीत होने लगता है-"उस का व्यक्तित्व आज फूट पड़ना चाहता है। लगता है कि उसके व्यक्तित्व पर पड़ी सारी बर्फ़ पिघल गई और अनार की हरियाली लहलहा उठी है। कुछ क्षणों के बाद उस में फिर निराशा का भाव जाग उठता है।"[2] उसका उभरता व्यक्तित्व फिर असन्तुलन की स्थिति में आ जाता है। परन्तु आधी रात के समय उसमें फिर एक विचित्र आतुरता उभरने लगती है, जो उसे नहा धोकर वही साड़ी, भाभी के उतारे हुए कलीड़े और कांच की चूड़ियां, बिन्दी-काजल आदि पहनने के लिए विवश करती है। ये सब वह अति शीघ्रता से पहन कर एक आदम-कद शीशे के सामने खड़ी हो जाती है। उसे नवेली दुल्हन का अपना व्यक्तित्व बड़ा ही प्यारा और मोहक प्रतीत होने लगता है। अब उसके कल्पना-लोक के समाचार-पत्र में उसके विवाह का चित्र सहित समाचार और सुहागरात का अद्‌भुत आनन्द चलचित्र के समान आता हुआ प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार वह "आईने की दुल्हन" बन कर अपना काल्पनिक व्यक्तित्व पाकर असीम आनन्द का अनुभव करती है।

निरूपमा सोवती के अनुसार विवाह नारी के व्यक्तित्व को गुलामी का जीवन जीने के लिए विवश करता है। और एक प्रकार उसके स्वरूप को ही नष्ट कर देता है। यह तो अपने हाथों ही अपने पहले स्वरूप का गला घोटना होता है। विवाह के उपरान्त अपनी पहली आदतों को विवश होकर छोड़ना पड़ता है।[3] मणिका मोहिनी की कहानी "ढाई आखर प्रेम का" में पति को पूरी तरह नकार कर 'बड़ी बकवास' चीज़ तक कह कर विवाह-संस्था को व्यर्थ सिद्ध किया गया है।"[4]

मारशिस की कहानीकार भानुमती नागदान की कहानी 'अनुबन्धन' की नायिका विलास अवनीश की पत्नी और दो बच्चों की मां है। उनका विवाह हुए चौदह वर्ष बीत जाते हैं। विवाह के पहले विलास का सम्बन्ध अपने भाई के मित्र स्वप्निल के साथ होता है, जिसकी जड़ उसके हृदय के किसी कोने में अभी भी शेष है। इसीलिए स्वप्निल के पोर्ट लुई में आने की सूचना पाकर वह सिहर उठती है। वह सोचती है कि वस्तुतः अवनीश के साथ उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध

1. *मेरी तीन मौतें, पृ. 187*
2. *मेरी तीन मौतें, पृ. 188*
3. *आतंक बीज तलफलाहट पृ. 52*
4. *अभी तलाश जारी है पृ. 18*

हुआ था। इसीलिए आरम्भ में उसका स्पर्श भी उसे अखरने लगा था- ''मैं कैसे उन्हें समझाती कि मन की दुनिया एक अलग दुनिया है। विवाह-वेदी की पवित्र अग्नि, मंत्रोच्चारण और अर्थहीन रस्में उसे नहीं बदल सकतीं। उनसे पुरुष को सिर्फ सामाजिक और शारीरिक अधिकार प्राप्त होता है।''[1]

पहली सन्तान कंचन का जन्म होने पर विलास के मन से स्वप्निल की छाया कुछ धुंधली पड़ जाती है और वह अवनीश के कुछ और समीप आ जाती है। उसके तुरन्त बाद स्वप्निल उसके भाई विशाल के साथ विदेश चला जाता है और वहीं पर विवाह भी कर लेता है।

पुत्र के जन्म के बाद विलास और अवनीश एक-दूसरे के कुछ और समीप आ जाते हैं। स्वप्निल एक दिन अचानक विदेश से पोर्ट लुई पहुँचने पर उनके घर जाता है। उस समय अवनीश घर पर नहीं था। नमस्ते के लिए विलास के हाथों को स्वप्निल ज्यों ही अपने हाथों में लेता है तो विलास का शरीर उसके सुखद स्पर्श से सहसा तरंगित हो उठता है। इसके साथ ही अतीत की सारी मधुर स्मृतियां उनके मन-मस्तिष्क में साकार हो उठतीं हैं और उन में दबा प्यार उमड़ने लग पड़ता है। कुछ समय पश्चात् अवनीश और उनके दोनों बच्चे भी घर पहुँच जाते हैं। इस से विलास... की स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है। वह अनुभव करती है कि उसका व्यक्तित्व विभाजित है। इसीलिए आगे चल कर वह कहती हैं- ''मेरी स्थिति अजीब थी। मैं विभाजित क्षणों में जी रही थी। स्वप्निल और अवनीश दोनों से मुझे प्रेम था। अवनीश मेरे पति थे। मेरे बच्चों के पिता। हमारे सुख, आराम और भविष्य की उन्हें चिन्ता थी। उनके प्रति मेरे प्रेम में कर्त्तव्य था, कृतज्ञता थी। हमारे मिलन में दो परिवारों की प्रतिष्ठा सम्मिलित थी और उस प्रतिष्ठा को हमें सुरक्षित रखना था। इन्हीं तत्त्वों की वजह से हमारा प्रेम निरन्तर गहरा होता गया था। स्वप्निल के प्रति भी मेरे मन में अगाध प्रेम था। उसे मैं मोह नहीं कह सकती। वह ऐसा प्रेम था जो एक औरत को मर्द से होता है, जहां समाज नहीं था, डर नहीं था, कर्त्तव्य की चिन्ता नहीं थी। आज इतने सालों के बाद भी स्वप्निल मेरे बिल्कुल करीब है तो मेरा प्यार जैसे उमड़-उमड़ कर बाहर आना चाहता है। मैं चीख-चीख कर लोगों से यह कहना चाहती हूं कि हां स्वप्निल से मुझे प्रेम है। और सच्चे प्रेम को शादी की दकियानूसी रस्में मिटा नहीं सकतीं। यह सच है कि उसने कभी मुझे स्पर्श तक नहीं किया पर आज मेरा मन करता है कि मैं स्वयं उसका स्पर्श करूं, चूमूं उसे अपनी बाहों में छिपा लूं। यही मेरे प्रेम की पुकार है।''[2]

परन्तु इसके साथ ही उसके संस्कार उसे सचेत करते हैं कि अब वह अवनीश की है और अब वह उसकी वस्तु किसी दूसरे को कदापि नहीं दे सकती।

स्वप्निल वहां जितने दिन भी रहता है प्रायः उनके घर आता-जाता रहता है। उनके साथ पिकनिकों पर जाता, सिनेमा देखने जाता और जब वह विदेश जाने से पहले अवनीश की अनुपस्थिति में उससे मिलने आता है तो विलास की मानसिक स्थिति फिर बड़ी विचित्र हो जाती है, जिसका ज़िकर वह यों करती है- ''मैं भीतर से बहुत अशान्त थी और बार-बार सोच रही थी कि सब कुछ छोड़ कर अभी स्वप्निल के साथ चल पड़ूं और एक नये जीवन की शुरुआत करूं, लेकिन फिर सोचती, नहीं मैं अपना घर, अपने बच्चे, अपने पति को छोड़

1-2. धर्मयुग अगस्त 1974पृ० 13-14

कर किसी दूसरे पुरुष की अनुगामिनी नहीं हो सकती। जाते-जाते जब स्वप्निल विलास के हाथों को अपने हाथों में लेने लगता है तो उसी समय अवनीश घर पहुँच जाता है जो यह सब देखकर एकदम सन्न रह जाता है। विलास स्वप्निल के चले जाने के बाद बड़ा रोती है अवनीश के पास लेटे-लेटे। अवनीश उसे क्षमा करके अपने गले से लगा लेता है।''[1]

दीप्ति खण्डेवाल की कहानी-'ये भी कोई गीत है।' में निशा और राजेश, शेखर और पुष्पा, इन्द्रनाथ और दीपाली का दाम्पत्य जीवन पूर्ण नहीं है। तीनों घुटन, असन्तोष और क्षोभ से हर समय पीड़ित हैं। तीनों के वैवाहिक जीवन असन्तुलित हैं। इसीलिए निशा कहती है-''मैं पत्नीत्व, मातृत्व और गृहणीत्व के सारे बन्धन भूलकर कुछ क्षणों के लिए मुक्त हो जाना चाहती हूँ। मन का मृग किसी अशेष तृप्ति की कामना से फिर भटकने लगा है।''[2] आखिर ऐसा क्यों ? क्योंकि आज की अधुनातन पत्नी अपने पत्नित्व के सारे कर्त्तव्यों के प्रति अपेक्षाकृत कम सजग है। उसका झुकाव अधिकतर अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने तथा पार्टियों और क्लबों में जाने की ओर है। अब पति से वह केवल अपनी ऐश में सहयोग तथा चुप्पी चाहती है। इसीलिए उसके पत्नित्व और मातृत्व दोनों अधूरे हैं। और इन दोनों के अधूरा होने पर उसका व्यक्तित्व भी कैसे पूर्ण हो सकता है? पुष्पा शेखर के आगे पूर्णतया समर्पिता है, परन्तु शेखर की ओर से अनुकूल प्यार न मिलने पर वह अपने भीतर एक विचित्र एवं पीड़ादायिनी अपूर्णता अनुभव करती है। अत: वह अपना वास्तविक व्यक्तित्व प्राप्त करने के लिए मन-ही-मन तड़पती रहती है।

दीपाली एक लेडी डाक्टर (सर्जन) है और उसका पति इन्द्रनाथ एक प्रोफेसर दीपाली की आय इन्द्रनाथ से कई गुणा अधिक है। इसलिंए उनके प्रेम-विवाह में कुछ ही दिनों के अनन्तर कटुता आनी आरम्भ हो जाती है। परिणामत: प्रो. इन्द्रनाथ आत्महत्या कर लेता है।

मन्नु भण्डारी की कहानी ''अकेली'' की नायिका सोमा-बुआ भी अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए सदा प्रयत्नशील रहती है। उसका पति संन्यासी बन चुका है और उसका एकमात्र पुत्र असमय ही काल कवलित हो जाता है। इस प्रकार सोमा बुआ विषैले अभावों से पीड़ित है। ये अभाव उसके व्यक्तित्व को इस प्रकार दबा देते हैं कि उसका कहीं अस्तित्व ही शेष नहीं रहता है, परन्तु फिर भी रह-रह कर उसके हृदय में अपने व्यक्तित्व को उभारने के लिए एक आन्दोलन-सा उठता है। एक तड़प या छटपटाहट होती है। इसीलिए वह शहर में किसी परिचित के यहां या सम्बन्धी के घर रस्मी बुलावे पर भी झट पहुंच जाती है। ऐसे अवसरों में सम्मिलित होने से उसे बड़ा सकून तथा शान्ति मिलती है। स्वभावानुसार किशोरी लाल के बेटे के मुण्डन-संस्कार के अवसर पर उसके बिना बुलाए चले जाने पर जब उसका पति उस पर बड़ा नाराज हो जाता है। तब वह अपनी पड़ोसन राधा से कहती ''मेरे लिए जैसा हरखू वैसा ही किशोरी लाल। आज हरखू नहीं है, इसीलिए दूसरों की देख-रेख कर मन भरमाती रहती हूँ।''[3]

---

1. धर्म युग' अगस्त 1974 पृ. 13-14
2. धर्मयुग, दिसम्बर 23, 1974
3. श्रेष्ठ कहानियां पृ. 61.

एक दिन सोमा बुआ के देवर के ससुराल वाले जब अपनी लड़की का विवाह करने के लिए उसी शहर आते हैं तो वह भी उस विवाह में सम्मिलित होने के लिए तैयारी करने लगती है। अपने मृतपुत्र की एकमात्र निशानी एक अंगूठी भी बेच कर साड़ी-ब्लाउज़ का कपड़ा तथा सिन्दूर-दानी खरीद लेती है। और अपने पहनने की साड़ी भी रंग लेती है, परन्तु जब काफी रात गए तक प्रतीक्षा करने पर भी उसे कोई भी निमन्त्रण नहीं आता है तो वह बड़ी निराश हो जाती है।[1]

मन्नू भण्डारी की एक अन्य कहानी 'यही सच्च है' में दीपा का व्यक्तित्व बड़ी उलझन तथा डांवाडोल स्थिति में है। वह कभी निशीथ की ओर झुकती है तो कभी संजय की ओर दीपा एक उच्च शिक्षा प्राप्त महिला है। निशीथ की बेवफाई के कारण ही तो वह कानपुर में संजय की ओर झुकती है, परन्तु संजय उसके समर्पण में विश्वास नहीं करता है। उसके मन को रह-रह कर कुछ कुरेदता रहता है कि दीपा के मन में अभी भी निशीथ ही स्थान बनाए हुए है। संजय के आगे पूर्ण आत्म-समर्पण करके भी वह उसके मन में विश्वास उत्पन्न करने में असफल रहती है। बस, यही उसके नारीत्व की पराजय है। कलकत्ता में इण्टरव्यू के लिए आने पर अपनी सखी हीरा के साथ काफी-हाउस में उसका निशीथ के साथ साक्षात्कार होता है और फिर निशीथ उसे इण्टरव्यू में सफल करवाने तथा पद पर नियुक्त करवाने के लिए भरसक प्रयत्न करता है। बदले में वह उसे यन्त्र-चालित मशीन जैसी बनाकर अपनी इच्छानुसार एक होटल में रखता है। परन्तु उसके साथ चलते समय उसे बड़ी बेबसी का अनुभव होता है। इसीलिए वह सोचती है "यों सड़क पर ऐसी हरकतें मुझे स्वयं पसन्द नहीं, पर आज जाने क्यों किसी की बाहों की लपेट के लिए मेरा मन ललक उठा है। मैं जानती हूँ कि जब निशीथ बगल में बैठा हो, उस समय ऐसी इच्छा करना या ऐसी बात·सोचना भी कितना अनुचित है, पर मैं क्या करूँ? कितनी द्रुत गति से यह टैक्सी चली जा रही है। मुझे लगता है, उतनी ही द्रुतगति से मैं भी वहीं जा रही हूं अनुचित, अवांछित दिशाओं की ओर।"[2]

और वह उसके साथ पहले स्काईरूम होटल और दूसरे दिन 'लेक' पर रहते हुए बड़ी डांवाडोल स्थिति में है। कभी वह उसके वर्तमान के एहसास के बदले उसके पिछले अपराध क्षमा करके उसके आगे अपने मन को पूर्ण आत्म-समर्पण की स्थिति में लाने लगती है तो कभी संजय का ध्यान आते ही वह निशीथ को स्पष्ट कहने की हिम्मत जुटाने का उपक्रम करने लगती है-"मैं संजय को अपना प्यार दे चुकी हूं।" ऐसी मानसिक उधेड़-बुन में उसे लगता है, कुछ उसे भीतर-ही-भीतर कचोट रहा है और फिर कानपुर लौटने पर उसका मन निशीथ की ओर बड़ी बेबसी से आकर्षित होता है- इसलिए विदा होते समय वह सोचती है- "मैं सब समझ गई निशीथ, सब समझ गई, जो तुम चार दिनों में नहीं कर पाए वह तुम्हारे इस क्षणिक स्पर्श ने कर दिया। विश्वास करो यदि तुम मेरे हो तो मैं भी तुम्हारी हूं ; केवल तुम्हारी, एक मात्र तुम्हारी पर मैं कुछ कर नहीं पाती, बस, ट्रेन के साथ चलते निशीथ को देखती भर रहती हूं। ...मेरी छलछलाई आंखें मुंद जाती हैं। मुझे लगता है, यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य

---

1. *वही # पृ. 58-65*
2. *श्रेष्ठ कहानियां, पृ. 134*

है, बाकी सब झूठ है। अपने को भूलने का, भरमाने का, छलाने का असफल प्रयास है और मुझे लगता है, यह दैत्याकार ट्रेन मुझे मेरे घर, अपने घर से कहीं दूर, दूर ले जा रही है, अनदेखी, अनजानी राहों में गुमराह करने के लिए, भटकाने के लिए।''[1] परन्तु संजय का ध्यान आते ही वह कांप उठती है। वह फिर निश्चय करती है कि उसे सारी बात समझा देगी। उसके हृदय की अतल गहराइयों में छुपा निशीथ का प्यार कलकत्ता में उसके तीन-चार दिन के सान्निध्य से ही बाहर आ गया है। अब वह आगे के लिए संजय से छल नहीं करेगी। वह सोचती है, वह उसे कह देगी- ''तुम्हारे उपकारों के बदले मैंने भले ही तुम्हें आत्म-समर्पण किया था परंतु उसमें पूर्णता नहीं आई थी। इसीलिए प्यार की बेसुध घड़ियां, वे विभोर क्षण, तन्मयता के वे पल, जहां शब्द चूक जाते हैं, हमारे जीवन में कभी नहीं आए। तुम्हीं बताओ, आए कभी? तुम्हारे असंख्य आलिङ्गनों और चुम्बनों के बीच भी एक अण के लिए भी तो मैंने तन-मन की सुध बिसार देने वाली पुलक या मादकता का अनुभव नहीं किया।[2]

मैं सोचती हूँ कि निशीथ के चले जाने के बाद मेरे जीवन में एक विराट शून्यता आ गई थी, एक खोखलापन आ गया था, तुमने उसकी पूर्ति की, तुम पूरक थे, मैं गलती से तुम्हें प्रियतम समझ बैठी। मुझे क्षमा कर दो लौट जाओ।''[3]

इस प्रकार दीपा एक विचित्र मानसिक स्थिति में पहुँच जाती है। जब उसे संजय के छोटे से पत्र द्वारा मालूम होता है कि पाँच-छः दिन के लिए वह कटक जा रहा है, तो वह एक हल्कापन अनुभव करती है और उधर निशीथ को लिखे पत्र के उत्तर की बड़े उतावलेपन से प्रतीक्षा करती है। उसकी दोहरी मानसिक स्थिति फिर डांवाडोल हो जाती है। वह एक दिन गली में खड़ी-खड़ी सोचती है-''लगता है जैसे मेरी राहें भटक गई हैं। मंज़िल खो गई है। मैं स्वयं नहीं जानती आखिर मुझे जाना कहाँ है? फिर भी निरुद्देश्य चलती रहती हूँ, पर आखिर कब तक यों भटकती रहूँ?''[4] और फिर वह जैसे हार कर लौट पड़ती है। घर आने पर भी उसकी मानसिक स्थिति यथावत् अस्थिर है। उसे महसूस होता है कि उसे अन्दर-ही-अन्दर कुछ छील रहा है। कुछ कचोट रहा है। एक अजीब-सी घुटन से उसका दम घुटता जाता है। परन्तु ज्यों ही उसे निशीथ का अत्यन्त संक्षिप्त तथा रूखा-सा पत्र मिलता है, उसके हृदय का तूफान ऐसे ही ठंडा पड़ जाता है जैसे उबलते हुए दूध पर पानी का छींटा पड़ने से वह झट दब जाता है और उसी समय उसे मुस्कुराता हुआ संजय सामने खड़ा दिखाई देता है। वह एक झटके से अपनी ख्वावों की दुनिया से लौट कर उसे वैसे ही पहचानने की कोशिश करती है जैसे कोई व्यक्ति अपनी खोई हुई वस्तु के मिलने पर करता है। तब उसके आलिंगन में बद्ध होकर वह अन्तिम निर्णय ले लेती है- ''यही सच है। वह सब झूठ था।'' इस प्रकार अन्ततः वह अपने व्यक्तित्व को सही दिशा देने में सफल हो जाती है।

इस कहानी के सन्दर्भ में डॉ. उमा शुक्ला के ये शब्द बड़े प्रासङ्गिक प्रतीत होते हैं- ''आज नारी ने पाप, नैतिकता, धर्म के अंकुश को अस्वीकार करके फेंक दिया है।''[5]

---

1. *श्रेष्ठ कहानियां, पृ. 140*
2-3. *श्रेष्ठ कहानियां पृ. 142*
4. *श्रेष्ठ कहानियां पृ. 144*
5. *स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में नारी का स्वरूप सं. श्रीधार शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद 1987 पृ. 52*

कमलेश्वर की कहानी ''कुछ नहीं कोई नहीं'' में गौरी का पुलिस के सिपाही दीवान के साथ अनुचित संबंध है। दीवान का जवान पुत्र सूरज यह सब सहन नहीं करता है। इसी बात पर उसकी अपने बाप से खटपट होती रहती है जो अन्ततः भारी शत्रुता में बदल जाती है। वह एक बार अपने बाप को इतना पीटता है कि उसे बेहोश कर देता है। वह जाकर गौरी को भी बार-बार नसीहत करता है कि वह दीवान को अपने पास न आने दे। गौरी उसके मदमाते यौवन से आकर्षित हो जाती है। जब दीवान एक झूठा केस बनवाकर सूरज को पकड़वा देता है तो गौरी देवीदीन परचूनी वाले को दो हज़ार रुपया देकर उसे छुड़वा लेती है। यह रुपया उसने एक मन्दिर बनवाने के लिए रखा था। वह उसे कई-कई दिनों के अन्तराल में मिलता है और यही नसीहत करता है कि वह दीवान को अपने पास न आने दे। उसके अदालत में पेश न होने पर उसकी जमानत ज़ब्त हो जाती है और गिरफ्तारी वारन्ट निकलते हैं, परन्तु वह पकड़ा नहीं जाता है। एक दिन जब वह मन्दिर के लिए कलश बनवाकर ले जा रहा था तो पुलिस उसका पीछा करती है, परन्तु वह सोने का कलश वहीं फेंक कर भाग निकलता है। कुछ दिनों के बाद गौरी को सन्देश भेजता है कि मिल जाओ परन्तु वह नहीं आती और पत्र लिख कर अपनी बेबसी प्रकट करती है- ''मैं बेबस थी। दीवान को नहीं रोक सकी क्योंकि आदमी के बिना स्त्री का जीवन अधूरा है। परन्तु जब वह गर्भवती हो जाती है तो दीवान उसके जहां आना बन्द कर देता है। तब वह सूरज को पत्र लिखती है- ''जब से दीवान जी को यह पता चला है तब से यहां नहीं आते। अब मैं क्या करूं? तुमने बहुत समझाया था पर मैं चूक गई। अब मेरा क्या होगा? शायद मैं छटपटा-छटपटा कर इसी घर में अकेले मर जाऊंगी और अब तो दोहरा पाप है। अकेली मर जाती तो ठीक था। खैर, भुगतूंगी। तुम्हें सौगन्ध है अगर जोख़िम में डालकर इधर आने की कोशिश की। मैं कुछ-न-कुछ कर लूंगी इन्तज़ाम। रुपये मेरे पास हैं।''[1]

पत्र पढ़ कर सूरज आगबबूला हो जाता है और दो पिस्तौल तथा कारतूस की पेटी बांध कर घोड़े पर सवार होकर चल पड़ता है और आ जाता है गौरी के द्वार पर। वहां आँखें लाल करके गौरी को घूर-घूर कर देखता है। उस समय गौरी कहती है-''तो मुझे मार दो सूरज। तुम मार दो मुझे चैन आ जाएगा। जो कुछ कर बैठी हूँ, उसे कैसे मिटा दूं...मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है।''[2]

स्पष्ट है कि गौरी बड़ी निस्सहाय तथा बेबस है। उसने जान-बूझकर कुछ नहीं किया। दीवान के जाल में फंसना उसके नितान्त कच्चेपन का परिणाम होता है। सूरज की सहायता से भी वह उस जाल से निकल नहीं पाती है। उसका व्यक्तित्व परिस्थितिओं के कुहासे में छुपा पड़ा है। जिसे वह चाहती हुई भी बाहर निकालने में असमर्थ है। अतः वह बेबस है। इसीलिए वह कहती है- ''सोचा ही नहीं कि इसका फल क्या होगा'' इतनी अक़ल ही नहीं कि सोच सकूं। जब जो ठीक समझा, जो मन हुआ कर दिया। मेरे साथ हमेशा कुछ-न-कुछ हो ही गया। कभी अपने के लिए कभी पराए के लिए।''[3]

---

1. *श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 74।*
2. *श्रेष्ठ कहानियां पृ. 75*
3. *वही- पृ. 141*

उसके ये शब्द ही उसके दिमागी कच्चेपन तथा भले-बुरे की पहचान कर सकने की क्षमता की कमी के साक्षी हैं।

असल में नारी जब अपने आपको अकेली और असहाय समझती है तब उसमें अपने अस्तित्व को बचाने की चिन्ता तीव्र रूप धारण कर लेती है। और यही चिन्ता कभी-कभी उसे ग़ल्त कदम उठाने के लिए भी विवश कर देती है। परिणाम यह होता है कि वह अपनी परम्परा को भी दकियानूसी समझ कर उससे टूट जाती है।[1] इस स्थिति में पहुँची हुई नारी भला अपने व्यक्तिव को कैसे उभार सकती है। इस सन्दर्भ में शोचनीय स्थिति तो यह है कि स्वतन्त्रता की अदम्य चाह नारी को कभी-कभी बुरी तरह उच्छृंखल भी बना देती है। इसीलिए वह सीता, सावित्री और अनुसूया आदि आदर्श नारियों के आदर्श पुराने और दकियानूसी समझने लग पड़ी है। वह अब अपने आपको पूर्ण स्वतन्त्र समझती है। वह अब पुरानी मान्यताओं को पूरी तरह तिलाञ्जलि दे चुकी है। आज उसने नैतिकता के कवच-कुण्डलों को उतार कर फेंक दिया है। राजेन्द्र यादव की ''जहाँ लक्ष्मी कैद हैं।'' मोहन राकेश की 'मलवे का मालिक', निर्मल वर्मा की 'वीक एंड लवर्स', उषा प्रियंवदा की ''ज़िन्दगी और गुलाब के फूल, पूर्ति, चाँद चलता रहे'', मेहरून्निसा परवेज़-'अपने होने का एहसास, अयोध्या से वापसी, अंतिम चढ़ाई, गुरुमान, रेगिस्तान आदि कहानियों में नारी के आधुनिकता के रंग में रंगे ऐसे ही विविध रूपों की अक्कासी की गई है। उषा प्रियंवदा की कहानी 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' की नीलू कई पुरुषों के साथ सम्पर्क साध कर सन्तोष अनुभव करती है। उसे अपने कृत्य पर तनिक भी ग्लानि नहीं है। वह जो कुछ भी करती है, उसे सही समझती है। 'पूर्ति' कहानी की नारी परपुरुष नलिन के साथ दैहिक सम्बन्ध स्थापित करके परम सुख की अनुभूति प्राप्त करती है। 'सम्बन्ध' कहानी की नायिका श्यामला बंधे-बंधाए और पुरानी लकीर पर चलने वाले जीवन से ऊब अनुभव करती है और इसीलिए उससे मुक्त होना चाहती है। कृष्णा सोवती, निरूपमा सोवती, भीष्म साहनी, रमेश बख्शी, शानी आदि कहानीकारों ने नारी स्वतन्त्रता को आधार बनाकर अनेक कहानियां लिखीं हैं। परन्तु इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि नारी ने अपने उत्थान के लिए अपनी आँखें ही नहीं खोल रखी हैं अपितु अब वह अपने भविष्य या भावी योजनाओं का चुनाव करने कि लिए भी स्वतन्त्र और सशक्त है। परन्तु दुःखद स्थिति तो यह है कि स्वतन्त्रता या मुक्त होने के नाम पर उसने जो पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण करना आरम्भ कर दिया है, उससे तो हमारी सामाजिक व्यवस्था के चरमराने का खतरा है। इस संदर्भ में डॉ. सुषमा नारायण की ये पंक्तियां गम्भीरता से विचारणीय हैं-''वैयक्तिक भावनाओं का आदर बढ़ा है, लेकिन उसने नारी को कहाँ ले जाकर खड़ा कर दिया है, यही चिन्तनीय विषय है। आज की नारी नैतिकता के हिस्से-हिस्से करके देख रही है....नैतिकता की मिशाल के प्रति अपना आक्रोश और विद्रोह व्यक्त कर रही है, पर क्या वह समाज को या जीवन को किसी प्रकार का भी मूल्य दे पा रही है।''[2]

---

1. *स्थान 96 दिल्ली पृ. 23*
2. *स्वातंत्रयोतर भारतीय साहित्य में नारी स्वरूप सं. श्रीधंर शास्त्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग इलाहाबाद*

ऊपर दिये गए सर्वेक्षण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश हिन्दी कथा-साहित्य उन नारी पात्रों-चरित्रों से भरा पड़ा है जो सामाजिक कुरीतियों और पुरुष वर्ग के अत्याचारों से ऊब और अति क्षुब्ध होकर नवचेतना के इस युग में सम्मानपूर्वक जीने के लिए अपने व्यक्तित्व को नये आयाम देने के लिए संघर्षशील हैं। यह ठीक है कि कुछ कहानियों के नारी-पात्र तथाकथित अत्याधुनिकता के वातावरण के रंग में इतना रंग गए हैं कि उन्हीं में अपने व्यक्तित्व को खोकर जीना चाहते हैं, पर इस प्रकार के चरित्रों का सृजन पश्चिम की कोरी या अन्धी नकल के सिवाय कुछ नहीं है। इस वैज्ञानिक युग के आलोक में एवं भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में सृजित कहानियों के नारी चरित्रों का अपने व्यक्तित्व की खोज के लिए संघर्षरत होना उचित भी है और श्लाघनीय भी। यदि पुरुष और स्त्री दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं और मानव-सृष्टि के सृजन में दोनों का समान योगदान है तो फिर नारी को उसके न्यायोचित अधिकारों से वंचित करके पुरुष द्वारा मनमाने ढंग से शोषित और प्रताड़ित क्यों किया जाए? उसे भी सम्मान के साथ जीने का अधिकार है। मां, बहन, पत्नी और पुत्री सभी रूपों में उसे सम्मानपूर्वक जीने का पूरा-पूरा अधिकार है। यदि वह अपने अधिकारपूर्ण सम्मान को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करती है तो सर्वथा उचित भी है एवं सराहनीय भी। यदि वह इससे विपरीत पश्चिमाभिमुख होकर अपनी तथाकथित स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करती है तो उसका वह कृत्य अवश्य निन्दनीय है।

ooo

वर्ष 2006 का नोबल पुरस्कार आधुनिक साहित्य के रचेयिता फेरित आरेहन पमूक को

❑ डॉ॰अशोक जेरथ*

अत्याधुनिक धारणाओं के प्रणेता और इटली के दबंग रचनाकार फेरित आरेहन पमूक अपनी सशक्त अत्याधुनिक धारणाओं के कारण जाने जाते हैं। इस वर्ष विश्व के सबसे बड़े साहित्यिक पुरस्कार नोबल से उन्हें पुरस्कृत किया गया है। अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से लैस यह व्यक्तित्व विश्व के साहित्य शिखर पर अपनी विशेष रचना-प्रक्रिया के कारण चर्चित रहा है। अक्तूबर 12, 2006 के दिन इन्हें नोबल पुरस्कार देने की घोषणा की गई। इस प्रकार इटली का यह पहला साहित्यकार है जिसे नोबल पुरस्कार से नवाज़ा जाएगा। पमूक का जन्म इस्तांबूल में सन् 1952 ई॰ में एक समृद्ध परिवार में हुआ। अमीर व्यवसाई-कारखानों के मालिक इकाई वाले इस परिवार में जो अनुभव उसने उम्र-भर बटोरे, उन्हें वह अपने उपन्यासों में चित्रित करता रहा है। पमूक द्वारा रचे गए उपन्यासों 'द ब्लैक बुक' तथा 'सेवदेत बे एण्ड हिज़ सन्ज़' तथा उसके द्वारा रचे गए संस्मरणों 'इस्ताम्बूल' में बड़ी शिद्दत के अंश महसूस किए जा सकते हैं। पमूक की शिक्षा-दीक्षा इस्तांबूल के रॉबर्ट कालेज में हुई, बाद में इस्ताम्बूल तकनीकि विश्वविद्यालय में उसने वास्तुविद् में शिक्षा ग्रहण की क्योंकि परिवार का दबाव था कि वह इंजीनियर बने पर उसे यह शिक्षा माफिक नहीं आई, अत: उसने इसे त्याग दिया और लेखन से पूरी तरह जुड़ गया। 1976 ई॰ में उसने इस्तांबूल विश्वविद्यालय से पत्रकारिता में डिग्री हासिल की पर कभी भी पत्रकार नहीं बन सका। पहले वह एक चित्रकार बनना चाहता था। फिर घरवालों के दबाव से इंजीनियर व वास्तुविद् फिर अपनी मर्जी से पत्रकार पर अन्तत: 23 वर्ष की आयु में उसने एक उपन्यासकार बनने का निश्चय कर लिया और बाकी सब कुछ त्याग दिया। उसने अपने आप को एक फ्लैट में बंद कर लिया था और लेखन कार्य में जुट गया था।

पमूक का प्रथम उपन्यास 'सेवदेत बे एण्ड हिज सॅन्ज़' सन् 1982 ई॰ में प्रकाशित होकर सामने आया। इस उपन्यास में एक अमीर इस्तांबूल परिवार की तीन पीढ़ियों की कहानी है जो कि निसांत्सी में रह रहे थे। यह पमूक का अपना घरेलू ज़िला था। इस उपन्यास पर उसे दो बार पुरस्कृत किया गया, एक आरेहन केमल पुरस्कार और दूसरा मिल्लिएत साहित्यिक पुरस्कार।

अगले वर्ष पमूक ने 'द साइलेंट हाऊस' नामक उपन्यास प्रकाशित किया। इसके फ्रेंच अनुवाद पर पमूक को सन् 1991 ई॰ में 'प्रिक्स दे ल देकोवर्ते युरोपीन' का महत्त्वपूर्ण पुरस्कार दिया गया। 1990 ई॰ में पमूक का एक अन्य उपन्यास 'द वाईट कॉस्ल' अनेक भापाओं में रूपान्तरित किया गया। इसमें एक वेनेशियन गुलाम और विद्वान ओट्टोमन की दोस्ती, दुश्मनी की तकरारों से भरी कहानी थी। इस उपन्यास ने पमूक को ख़्याति के शिखर पर पहुंचा दिया और उसे अमरीका में कोलम्बिया विश्वविद्यालय में 'विजिटिंग स्कॉलर' के तौर पर निमंत्रित किया गया। जहाँ वह तीन वर्ष तक रहा और इन तीन वर्षों में उसने अपने उपन्यास 'द ब्लैक बुक' पर कार्य किया। इस उपन्यास में एक वकील अपनी पत्नी को ढूंढ़ता हुआ इस्तांबूल के गलियों-कूचों में विचरता हुआ अचानक हमें वहां की संस्कृति से परिचित करवा जाता है। अब लेखक अपनी शैली को अति-आधुनिक बनाने लगता है। अनेक समालोचकों ने पमूक के साहित्य पर टिप्पणियां

की हैं। इन्हीं दिनो 'द न्यूयार्क टाईम्स' ने पमूक के बारे में लिखा था।

पूर्व में एक नया सितारा चमका है-आरेहन पमूक। सन् 1992 ई० में उसने एक चर्चित फिल्म के लिए 'सिक्रिट फेस' नामक आलेख लिखा जिसे प्रसिद्ध तुर्की निदेशक ओमेर कवुर ने निर्देशित किया था।

पमूक का चौथा उपन्यास 'येनी हयात' अर्थात् 'नया जीवन' ने तुर्की में बलबला मचा दिया। यह तुर्की में ज़्यादा विकने वाली किताव थी। अब पमूक राजनैतिक जीवन में भी भाग लेने लगा था-वह कुर्दिश राजनैतिक अधिकारों की बात खुलकर करने लगा था। अक्सर वह तुर्की सरकार की कुर्दों के बारे में नीति को कोसने लगा था। 1999 ई० में उसने एक कहानी संग्रह 'ओतेकी रेन्क्लेर' अर्थात् 'दूसरे रंग' नाम से प्रकाशित हुआ और सन् 2000 ई० में 'बेनिम आदिम किरमिज़ी' अर्थात् 'मेरा नाम सुर्ख है' कृति प्रकाशित हुई। यह कृति 24 भाषाओं में रूपान्तरित हुई और इस पर संसार का अन्यतम पुरस्कार 'आई० एम० सी० ए० सी० डबलिन 2003 दिया गया।'

जब उपन्यासकार से 1,27,000 डॉलर अर्थात् रुपये 63,50,000/- जैसी बड़ी रकम वाले पुरस्कार पाने के बाद उसकी प्रतिक्रिया जाननी चाही तो उसने कहा कि मुझ में इस पुरस्कार से कोई परिवर्तन नहीं आया है क्योंकि मैं तो हर रोज़ लिखता हूँ। मैंने उपन्यास व कथा साहित्य लिखने में तीस वर्ष व्यतीत किए हैं। पहले दस वर्ष तक मैं पैसों की चिंता में रहता था कि निर्वाह कैसे होगा अब हरेक यह जानना चाहता है कि मैं इन्हें कैसे खर्च करूंगा-पर मैं इसकी चर्चा नहीं करना चाहता।

पमूक का ताज़ा उपन्यास 2002 ई० में प्रकाशित हुआ। जिसका रूपान्तरण 'स्नो' के रूप में सन् 2004 ई० में हुआ। यह उपन्यास विश्व 2004 की दस श्रेष्ठ पुस्तकों में एक माना जाता है।

पमूक के अनेक संस्मरण, यात्रा लेख भी प्रकाशित हुए हैं। 'इस्ताम्बूल' के संस्मरण 2005 के चर्चित संस्मरण हैं, जिनका अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। पमूक को 2005 ई० में 'जर्मन बुक ट्रेड' नामक शान्ति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। जो 25000/- यूरो लगभग 12,50,000/- रुपये बनते हैं। यह अति चर्चित पुरस्कार फ्रेंकफर्ट में सेंटपॉल चर्च में दिया गया।

अक्तूबर 12, 2006 को स्वेडिश अकादमी ने 2006 का नोबल पुरस्कार पमूक के नाम घोषित कर उसे 2006 का सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार मान लिया।

अपनी घोषणा में अकादमी ने कहा है-

''अपने नगर की उदास आत्मा की तलाश में पमूक ने नये प्रतीकों द्वारा संस्कृतियों में संघर्ष और जुड़ाव की बात की है।'' अपने साक्षात्कार में उसने दबंग होकर कहा है कि इस रचनात्मक प्रक्रिया के चलते तीस हजार कुर्द और दस लाख अरमेनियन मारे जा चुके हैं।

सन् 2005 ई० में दो तुर्की वकीलों ने पमूक पर इसलिए मुकद्दमा दायर कर दिया था कि उसने अनातोलिया में तीस हज़ार कुर्दों के कत्ल की बात कही थी, पर 22 जनवरी 2006 ई० को यह मुकद्दमा वापिस ले लिया गया। जब उस पर मुकद्दमा दायर हुआ तभी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शोर उठा था और चहुं ओर से उसे सहायता मिलने लगी थी। उसके वक्तव्य पर खूब चर्चा होने लगी थी। विश्व-भर के बुद्धिजीवियों और समाचार पत्रों ने इस पर अनेक टिप्पणियां की थीं। शायद यही कारण था कि पमूक के विवादास्पद लेखन पर स्विडिश अकादमी का ध्यान गया और अन्ततः उसे नोबल पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। ०

शिवप्रसाद सिंह के उपन्यासों में विश्व-मानवता का बोध

❑ डॉ० मज़हर अहमद ख़ान*

हमारे देश के लोग भौगोलिक और सांस्कृतिक वैविध्य के बावजूद एक परिवार, समुदाय के रूप में संगठित होकर रहते चले आए हैं। हमारे प्राचीन ग्रन्थों का प्रमुख संदेश भी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का रहा है। इसीलिए यहां सम्पूर्ण विश्व को एक वृहद् परिवार की संज्ञा दी गई है। यह पारिवारिक भावना ही एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से जोड़ कर विश्व-मानवता की भावना को स्थापित करती है। इस दिशा में यूनानी, शक, कुषाण, हूण आदि राष्ट्रों के लोग आए और उनमें से अनेक यहीं पर बस गए। हमारे देशवासियों ने अपनी राष्ट्रवादी चेतना के बल पर उन्हें आत्मसात कर लिया। हमारी इस उदार नीति का अनुसरण कर दक्षिण एशिया के सात छोटे-छोटे राष्ट्रों को संगठित कर, एक संघ का रूप प्रदान कर 'सार्क' के रूप में मान्यता दी गई। इस संघ की स्थापना का मुख्य उद्देश्य विश्व-मानवता, शान्ति, सहयोग और एकता की भावना को सुदृढ़ बनाना है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने, उन्हें स्थापित करने के लिए विश्व-मानवता की भावना का होना अनिवार्य है।

विश्व-मानवता के विकास में साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। ''साहित्य मानव सम्बन्धों में साम्यमयी स्थिति का प्रतिष्ठापन करता है। साहित्य का ध्येय है-मानव-मानव के पारस्परिक सम्बन्धों में सुधार हो, जिससे देश में और देश के बाहर भी साम्यमयी स्थिति निर्मित हो, जिससे विश्व-शान्ति की आधारपीठिका बने।''[1] शिवप्रसाद सिंह के अनुसार, ''आज से सहस्रवर्ष पूर्व भारत के ऋषि न केवल विश्व मानुष की कल्पना करते थे बल्कि विश्व मानुष शब्द का सीधा प्रयोग इस बात का साक्ष्य देता है कि उनके सामने सम्पूर्ण मानव-जाति अपनी निजी पारिवारिकता के स्नेह-सूत्र में बंधी हुई थी।''[2] यह ध्यात्वय है कि भारतवर्ष के लिए विश्व मानवता की परिकल्पना कोई नवीन सोच नहीं है। यह तो अनादिकाल से यहाँ विद्यमान रही है। कथाकार के अधिकांश उपन्यास विश्व-मानवता की भावना से अनुप्राणित हैं; जैसे- 'नीला चाँद, कुहरे में युद्ध, दिल्ली दूर है, वैश्वानर' आदि।

उपनिषद्कालीन उपन्यास 'वैश्वानर' का पात्र विष्णु कलांश धन्वन्तरि एक ऐसा दिव्य पुरुष है जिसने ऊँच-नीच, छूत-अछूत की चिंता किए बिना अपना सम्पूर्ण जीवन मानव-कल्याण के लिए समर्पित कर दिया था। तत्कालीन काशीनगर में तक्मा रोग से ग्रस्त मुंडा-किरात, अनार्यों की दुर्गंधित झोंपड़ियों में जाकर उनकी व्यथा-वेदना का प्रत्यक्ष अनुभव किया। सहस्रों की संख्या में तक्मा रोगियों को मरते देख वह उद्वेलित हो उठता है। इस महामारी से निदान पाने के लिए वह रात-दिन औषधियों के नाना प्रयोग करने के उपरान्त सफलता प्राप्त करता है। उस नवीन औषधि की रासायनिक प्रतिक्रिया का प्रभाव जानने के लिए सर्वप्रथम उसका प्रयोग स्वयं पर करता है। निश्चिंत होने के उपरान्त उसे रोगियों में वितरित करता है। वह अपने जीवन के अंतिम समय में भी राज्यक्षमा के रोग से पीड़ित भृंगीश के लिए औषधि का नाम लिख कर अपने सिरहाने छोड़ देता है। अपने इस सेवाभाव के कारण वह सम्पूर्ण आर्यावर्त का धाता बन जाता है।

* *मोहल्ला; साज़गरीपोरा (हवल): श्रीनगर-190011 (कश्मीर)*

मध्यकालीन काशी पर आधारित उनके उपन्यास 'नीला चाँद' में वर्णित राजा हर्षदेव द्वारा राष्ट्रसंघ का गठन करना तद्‌युगीन विश्व-मानवता की महत्ता को प्रतिपादित करता है। राजा हर्षदेव ने जिस राज्य को स्वतंत्र बनाया उसकी सम्प्रभुता और स्वाधीनता को बनाए रखने के लिए उसने विधाधर देव के नेतृत्व में संघबद्ध होकर तत्कालीन नरेश गंगादेव, भोज परमार, गंडदेव आदि ने यमिनी आक्रमण को ध्वंस्त किया और महमृद गजनवी को कालंजर में पराजित हो वापस लौटना पड़ा था। उदभांड से लेकर पाटलीपुत्र और हिमालय की उत्तुंग श्रेणियों से लेकर विंध्यमेखला तक उसका साम्राज्य था। वह शूद्रों, नटों, चाण्डालों, आदिवासियों आदि निम्न जाति के लोगों के प्रति स्नेह भाव रखता था। उसने लोगों की भावनाओं की क़द्र करते हुए, उनके सुख-दुख में सम्मिलित होकर अपना सम्पूर्ण जीवन उन्हें समर्पित कर दिया था। तुर्क सेनापति नियाल्तगीन यदि अपने पांच-सौ सैनिकों को लेकर काशी को लूटने और गांगेयदेव को पराजित करने में सफल हुआ तो उसका मुख्य कारण गांगेयदेव का अपनी प्रजा और राज्य के प्रति उदासीन होना था। कीर्तिवर्मा भी अपने पिता विद्याधर देव की भांति जन-सम्पृक्ति से जुड़ा शासक था। इसीलिए उसे उसकी प्रजा रुद्रावतार मानती थी। विद्याधर देव की भांति उसने भी छूत-अछूत, ऊँच-नीच में कोई भेद नहीं किया। वह सभी को उचित आदर और सम्मान देता था। उसकी इस नीति से धार्मिक रूढ़ियां, धर्म, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय आदि की संकुचित सीमाएं विश्रृंखलित हुई और समाज में एक नई चेतना, जागृति उत्पन्न हुई। इस चेतना के फलस्वरूप ही विश्व-मानवता की अवधारणा का समाज में प्रचार-प्रसार हुआ।

'कुहरे में युद्ध' का नायक आनंद वाशेक मानवता के विकास, राष्ट्रीय चेतना को पुष्ट करने, एक शान्ति दूत, विश्व को नव-प्राण-धन देने के रूप में उभर कर सामने आया है। वह देवत्व और दानत्व के गुणों से ऊपर उठ कर विचित्रताओं की प्रतिमूर्ति बन कर मनुष्यत्व की बुलंदियों को छू रहा है। उसका राष्ट्रप्रेम, बलिदान की भावना, परदुखातुरता उसे महामानव की पंक्ति में ला खड़ा करता है। उसका निःस्वार्थ प्रेम, अदम्य साहस, अपने अहम् को निचोड़ कर विराट में विलीन होने का प्रयास, विरोधी परिस्थितियों में भी अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करने वाले लोग, अपने राष्ट्र के गौरव की रक्षा करने में अपना बलिदान देने वाले व्यक्ति, वे ही हैं जो निजी स्थूल पिंजड़े को तोड़ कर सर्वव्यापी चेतना में विलीन होने के लिए जूझ रहे हैं। राजा त्रैलोक्यमल्ल का उत्तराधिकारी युवराज भोजवर्मा आनंद वाशेक को उसके दुर्लभ गुणों के कारण ही महामानव के रूप में देखता है।

'दिल्ली दूर है' में तुर्क राजनीतिक और धार्मिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आते हैं। जिसके परिमाणस्वरूप इस्लाम धर्म का प्रभाव भारत की मूल संस्कृति पर पड़ने लगा था और दो विभिन्न संस्कृतियां एक-दूसरे के विरोध में खड़ी हो गई थीं। तत्कालीन हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष, वैमन्यस्य और अन्तर्विरोधों को समाप्त कर समन्वय स्थापित करने के लिए आनंद वाशेक सतत् प्रयत्न करता है। वह मानवता के विकास का पक्षधर है। यद्यपि वह इस्लाम के बढ़ते प्रभाव को रोकने में असफल रहता है तथापि तत्कालीन दारुण परिस्थितियों में भी विश्व के सामने मानवता और विश्वबंधुत्व की भावना को प्रतिष्ठापित करने में सफल रहता है। ०

संदर्भ ग्रन्थ

1. *हिन्दी उपन्यास : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का स्वरूप-डॉ. प्रभा वर्मा, पृष्ठ-313, कलासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, सन् 1990*
2. *वैश्वानर-शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ-11, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1996*

"डुग्गर धरती का सिद्धपीठ श्री नृसिंह मन्दिर, घगवाल"

❑ मंगल दास डोगरा*

जम्मू से 58 कि० मी० पूर्व की ओर जम्मू-पठानकोट राष्ट्रीय राजमार्ग पर घगवाल नाम का एक बड़ा प्रसिद्ध नगर आता है। यह नगर ज़िला कठूआ का, कठूआ नगर के बाद दूसरा सब से बड़ा नगर है। और जितना भी विकास यहां पर हुआ है, यह सब नृसिंह भगवान की कृपा से ही हुआ है। नृसिंह भगवान का यहां पर एक बहुत बड़ा, भव्य, प्राचीन और पौराणिक मन्दिर बना हुआ है, जिस में नृसिंह भगवान की स्वयंभू और अद्‌भुत दो प्रतिमाएं और तीसरी माता अन्नपूर्णा की एक स्वयंभू और विचित्र प्रतिमा यहां पर स्थापित है। नृसिंह भगवान केवल घगवाल या इसके आस-पास के गांवों में ही नहीं अपितु सारे डुग्गर प्रदेश में जम्मू, कठूआ, उधमपुर, रामनगर, डुडू-बसंतगढ, बनी, बिलावर, बसोहली, रामबन, डोडा, भद्रवाह आदि स्थानों में भी बड़ी श्रद्धा एवं भक्तिभाव से पूजे जाते हैं। इतना ही नहीं पंजाब एवं हिमाचल राज्य के लोग भी समय-समय पर आकर इनके आगे श्रद्धान्वित होते हैं। ये पंजाब और हिमाचल प्रदेश और कई दूसरी जगहों के लोगों के पूज्य और आराध्य देव हैं और इस गद्दी की मान्यता और प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है। 1947 में पाकिस्तान बनने से पहले स्यालकोट और लाहौर से भी लोग दर्शनों के लिए यहाँ पर आते थे।

प्राचीन काल से यहां पर अखंड लंगर लगता चला आ रहा है और प्रतिदिन बाहर से यहां सौ से अधिक श्रद्धालु नृसिंह भगवान के दर्शन करके अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिये प्रार्थना करते हैं। मंदिर के परिसर में दस-पंद्रह साधु-सन्यासी भी सदा ठहरे रहते हैं। इन सब यात्रियों के भोजन आदि की व्यवस्था मन्दिर में ही होती है। मेलों और पर्वों पर तो यहां आने वालों की संख्या हजारों तक पहुंच जाती है।

मन्दिर की देख-रेख नमार्गी सम्प्रदाय के महन्त प्राचीन काल से करते आ रहे हैं, जिन की इस समय सोहलवीं पीढ़ी चल रही है और इस समय गद्दी पर महन्त 1008 श्री अजय दास जी महाराज विराजमान हैं और वे मन्दिर की सुचारू व्यवस्था कर रहे हैं। यह स्थान कितना प्राचीन है इस का अनुमान लगाना तो कठिन है। महन्त जी के अनुसार यह स्थान लगभग 1200 साल पहले प्रसिद्ध सन्त भगत सूरदास जी के गुरु 1008 श्री नरहरी दास जी ने चेताया था। सन्त श्री नरहरि दास जी को भगवान नृसिंह महाराज़ ने स्वप्न में दर्शन दिये थे। उन से पहले भी यह तपोस्थली थी। श्री नरहरि जी महाराज ने सारी उम्र यहां घोर तप किया और अंत में यहीं पर जीवित समाधि ली। वही इस मन्दिर के पहले महन्त हुए हैं। इन की समाधि इस

* *132/4 जे० डी० ऐ० हौसिंग कालोनी रूप नगर जम्मू 180013*

मन्दिर के प्रांगण में ही है। इस पर एक प्राचीन चबूतरा बना हुआ है। इस चबूतरे पर वट, नीम, द्रांकल, रिहाड़ और गरने के पांच पेड़ प्राचीन काल से ही लगे हुए हैं। इसी चबूतरे पर हनुमान जी और धर्मराज जी की मूर्तियां भी स्थापित की गई हैं और भगवा झंडा भी आदि काल से इस समाधि पर लहरा रहा है। वर्तमान महन्त के अनुसार श्री नरहरि दास जी वृंदावन से सलेमावाद राजस्थान से होते हुए यहां आए थे। यहां पर इस धरती को पवित्र जानकर उन्होंने यहां घोर तप किया और नृसिंह भगवान के साक्षात् दर्शन किये।

सबसे पहले इस मन्दिर का निर्माण चन्द्रवंशी राजमाता वृंदा जी ने करवाया था। जो राजस्थान के मुलतान नगर (प्राचीन नाम मूलस्थान) से यहां पधारी थीं। उन्होंने ही यहां एक मन्दिर बनवाकर उसमें नृसिंह भगवान की दो बड़ी ही अद्भुत और स्वयंभू प्रतिमाएं स्थापित कीं। एक प्रतिमा नृसिंह भगवान की है और दूसरी नृसिंह अवतार की। राजमाता ने मन्दिर के साथ ही पचास कनाल से अधिक भूमि पर एक पक्के सरोवर (तालाब) का निर्माण भी करवाया जो हमेशा पानी से भरा रहता था। 40 साल पहले इस सरोवर में नौका भी चलती थी लेकिन अब सरोवर के चारों ओर मकान और दुकानें बन गई हैं और पानी भी सूख गया है, जो बड़े दुःख की बात है।

जैसा पहले भी लिखा जा चुका है कि मन्दिर में स्थापित दोनों मूर्तियां कुदरती बनी हुई हैं और किसी कारीगर द्वारा निर्मित नहीं है। कोई भी मूर्तिकार ऐसी प्रतिमा नहीं बना सकता। महन्त जी ने बताया कि तीसरी प्रतिमा माता अन्नपूर्णा जी की है जिस का प्राकट्य आज से लगभग 150 वर्ष पहले एक दासू नामी गूजर के खलिहान में हुआ। प्राचीन काल से ही सारे डुग्गर-प्रदेश में और इस के आस-पास एक प्रथा चली आ रही है कि किसी भी घर में कोई भी खाने की नई वस्तु जैसे दूध, घी, फल या अन्नादि लाया जाए तो पहले नृसिंह भगवान जी के नाम पर इस का कुछ भाग चढ़ाया (निकाला) जाता है इसको यहां ''द्याह्ली, सुच्चा और सयोडी'' कहते हैं। मंदिर में यह चढ़ावा हिन्दू-मुसलमान सभी चढ़ाते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी कारण से मन्दिर घगवाल न आ सके तो चढ़ावे की चीजें किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा मन्दिर पहुँचा दी जाती हैं। मन्दिर के साथ प्राचीन काल से ही राजाओं ने तीन-सौ एकड़ जमीन की जागीर भी लगा रखी थी जो खात्मा चक्कदारी का नया कानून बनने पर खत्म हो चुकी है और अब केवल 200 कनाल जमीन ही रह गई है।

माता अन्नपूर्णा की मूर्ति से संबंधित किंवदन्ती यूं है–घगवाल से तीन कि० मी० दक्षिण पश्चिम में एक सनूरा नाम का गांव है यहां एक मोडा मनैडी में एक दासू नाम का किसान गूजर था। उसकी फसल जब खलिहान में तैयार हो गई और ''सयोडी'' निकालने का समय आया तो दासू ने इन्कार कर दिया कि ''मैं सयोडी नहीं दूंगा।'' इस पर बिना 'सयोडी' निकाले पुरानी प्रथा के विपरीत अन्न के ढेर की भराई (नाप-तोल) होने लगी। इस घटना के समय आज से कोई 150 वर्ष पूर्व सनूरा में भूतपूर्व सांसद ठा० बलदेव सिंह जी के कोई पूर्वज नम्बरदार थे। ढेरी नापते-नापते ही दो दिन-बीत गए लेकिन ढेरी खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही थी। दासू के अन्दर-बाहर अन्न-ही-अन्न हो गया। छोटी-सी ढेरी थी और दो दिन बीत गए। दो-तीन घंटे का तो काम था। गांव के सारे लोग इकट्ठे हो गए और इस घटना पर आश्चर्यचकित हुए। हार कर वहां आए सब लोगों ने नृसिंह भगवान की पूजा की और क्षमा-याचना की, दासू ने भी क्षमा मांगी और कहा

कि यह सारा अन्न तो नृसिंह भगवान का ही है। वह तो अपना हक ही लेगा। इस पर यह ढेरी शान्त हो गई। उसी अन्न की ढेरी से माता अन्नपूर्णा की यह अद्‌भुत प्रतिमा प्रगट हुई। इस प्रतिमा पर धरती के जितने भी अन्न हैं उन के दाने अंकित हैं। दासू गूजर ने अपने परिवार के लिये अन्न रख लिया और बाकी का सारा अन्न और माता अन्नपूर्णा जी की यह प्रतिमा लेकर नृरसिंह मन्दिर घगवाल में उपस्थित हो गया और सारी उमर नृसिंह भगवान के मन्दिर में ही रहा और माता अन्नपूर्णा जी की यह अद्‌भुत स्वयम्भू प्रतिमा भी नृसिंह भगवान की प्रतिमा के साथ ही शास्त्रीय विधि-विधान से स्थापित कर दी गई।

पद्म महापुराण के अनुसार यहां पर ही चतुर्युग में विष्णु भगवान के चौथा अवतार भक्त प्रह्लाद का प्रजा की रक्षा के लिये और दैत्यराज हिरण्यकशिपु को मारने के लिये मूलस्थान (मुलतान) में हुआ था। नृसिंह भगवान ने बारहां सूर्यों को धारण कर रखा है और वह ही भक्तों का अभीष्ट सिद्ध करने के लिये महात्मा नृसिंह के रूप में प्रकट हुए थे। भगवान का नृसिंह अवतार हरीत ब्राह्मण के घर हुआ था। हरीत की पत्नी का नाम लीलावती था।

इतिहास में इस मन्दिर का वर्णन सबसे पहले प्रो० गौरी शंकर द्वारा लिखी गई पुस्तक कवि दत्त ग्रंथावली में मिलता है। कवि दत्तू जो 'भड्डू' के रहने वाले थे और महाराजा रणजीत देव के दरबारी कवि थे ने लिखा है कि नृसिंह मन्दिर घगवाल में नृसिंह यन्त्र की स्थापना उनके (कवि दत्तू) गुरु श्री सूर्य नारायण जी ने की थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि नृसिंह भगवान का यह मन्दिर जम्मू के महाराजा रणजीत देव और जसरोटा के राजा रतन देव जो जम्मू के राजकुमार के मित्र भी थे ने मिलकर श्री सूर्य नारायण की देख-रेख में दोबारा बनवाया था। ऐसा लगता है कि राजमाता वृन्दा द्वारा बनवाया प्राचीन मन्दिर उस समय तक जीर्ण-शीर्ण हो चुका होगा और ऐसे भव्य मन्दिर बनवाना राजा-महाराजाओं का ही काम था। मन्दिर चार फुट ऊँचे चबूतरे पर जिस की लम्बाई-चौड़ाई 38 फुट है, बना हुआ है। दीवारें चार फुट से कुछ अधिक मोटी हैं जो पत्थर की तराशी हुई ईंटों से चूने-सुर्खी में बनाई गई हैं। मन्दिर शिखिर शैली में न होकर गुंबदाकार है और मन्दिर की ऊंचाई 12 से कुछ अधिक है। छत भी चूने-सुर्खी से बना हुआ है। मन्दिर के अन्दर दीवारों और छत पर जसरोटा कलम में चित्रकारी भी हुई है। लेकिन अब यह नाममात्र ही रह गई है। मंदिर के बरामदे में दाईं ओर महन्त जी की गद्दी है और इसके आगे महन्तों की समाधियां हैं। जिन पर महन्तों के नाम लिखे हुए हैं। मन्दिर के गर्भगृह के द्वार के दाईं ओर मन्दिर की आदि निर्मात्री राजमाता वृन्दा की मूर्ति दीवार के बीच में जड़ी हुई है जिस का आकार 2×2 है और यह काले पत्थर की बनी हुई है। राजमाता पालकी में बैठी हैं और कहार पालकी उठाए हैं। राजमाता को हुक्का पीते हुए दर्शाया गया है और आगे-पीछे राजपुत्र और अधिकारी चल रहे हैं। मन्दिर के आंगन में एक बड़ा चबूतरा है, जिसका उल्लेख पहले किया गया है। इस के साथ ही साधु-संतों के ठहरने के कमरे बने हुए हैं। आगे वृन्दा माता का मन्दिर है जिसमें अष्टभूजी शक्ति माता की भव्य मूर्ति स्थापित है। इसके आगे महाराजा रणवीर सिंह जी का बनाया हुआ छात्रावास और पाठशाला है। मन्दिर के पीछे पाठशाला और लंगर है। मन्दिर के अन्दर एक चबूतरा बना हुआ है, जिस पर राम दरबार और राधा-कृष्ण की मूर्तियां स्थापित हैं। चूबतरे के मध्य में एक चौकी पर नृसिंह भगवान, नृसिंह अवतार और माता अन्नपूर्णा की भव्य प्रतिमाएं स्थापित

हैं और बहुत से शालिग्राम गर्भगृह की शोभा को चार चांद लगाऐ हुए हैं और यह भक्तजनों की मनोकामना पूरी करते हैं। सच्चे दिल से भक्त जो कुछ भी मांगते हैं, नृसिंह महाराज उन की कामना पूरी करते हैं।

श्री सूर्य नारायण जिन्होंने यहां नृसिंह यन्त्र की स्थापना की उस समय के एक महान गुरु, आचार्य और तांत्रिक विद्वान थे जो दक्षिण भारत से डुग्गर-प्रदेश में आए थे और यहां वह 25 वर्ष रहे थे। ग्रंथावली और दत्तू की रचनाओं से लगता है कि सूर्य नारायण उत्तरवाहिनी और जम्मू के विश्वविद्यालयों में कुलपति भी रहे। उस समय जम्मू में महाराजा रंजीत देव और जसरोटा में राजा रतन देव राज करते थे। इन का शासन काल 1730 ई० से 1780 ई० तक का है, लेकिन तरक्की और निर्माण का समय 1750 से 1780 ई० के बीच ही रहा और लगभग इसी काल में इस प्राचीन और जीर्ण-शीर्ण नृसिंह मन्दिर का पुनर्निमाण महाराजा रंजीत देव और रतनदेव ने श्री सूर्य नारायण की देख-रेख में करवाया होगा।

मंदिर की बाईं ओर सत्संग घर बना हुआ है और इसके आगे यात्रियों और साधु-महात्माओं के ठहरने के लिये कमरे हैं। प्रांगण के एक कोने में अष्टभुजा माता वृन्दा का मन्दिर है। वृन्दा माता के मंदिर के साथ ही छात्रावास है जो प्राचीन काल में पाठशाला का भाग था। बहुत देर तक, यहां संस्कृत पाठशाला चलती रही। छात्रों को यहां कर्म-कांड पढ़ाया जाता था। नृसिंह महाराज के प्राचीन मन्दिर के पीछे एक खुला आंगन है, यहां पर भोजन परोसा और पकाया जाता है।

मंदिर में प्रवेश करने के लिए पांच द्वार थे। इन में से पहला द्वार महाराजा प्रताप सिंह जी के बज़ीर कन्हैया जी (जो घगवाल के साथ ही एक गांव ''नाहरन'' के रहने वाले थे) ने बनवाया था। वज़ीर जी ने मन्दिर से कोई सौ गज बाहर एक कुआं भी बनवाया जो 150 फुट से ज़्यादा गहरा है और इसका पानी कभी नहीं सूखता। कुआं और ड्योढ़ी वजीर कन्हैया जी ने महाराजा प्रताप सिंह की प्रेरणा से संवत् 1961 ई० में बनवाए। द्वार भी बड़ा विशाल था और अब यह गिर गया है और इस जगह पर एक द्वार बना दिया गया है और इस के आगे दो और द्वार हैं। इस के साथ ही वज़ीर ने घगवाल में एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। उसमें 125 मन पक्के चावल (50 क्विंटल) बने थे। यह एक-सौ साल पहले की घटना है और लोगों के सम्मिलित होने का अनुमान इससे ही हो सकता है। इस यज्ञ के समय की एक घटना महन्त जी ने सुनाई जो उन्होंने अपने गुरुओं से सुनी थी। हुआ यह कि एक कैदी कठुआ से जम्मू ले जाया जा रहा था। दारोगा इस को जम्मू ले जा रहे थे। रात में इन को कैदी सहित घगवाल रुकना पड़ा। यह बन्दी निर्दोष था। रात को इस ने नृसिंह भगवान का स्मरण किया। नृसिंह भगवान ने वज़ीर को स्वप्न में कहा कि कल तुम्हारे यहां एक बन्दी आएगा उसे छोड़ देना। दूसरे दिन बन्दी ने यज्ञ देखने की इच्छा प्रगट की। बन्दी को बजीर कन्हैया जी के सामने प्रस्तुत किया गया। उन्होंने तुरन्त बन्दी को छोड़ देने की आज्ञा दी और कहा की यह नृसिंह भगवान की इच्छा है।

प्राचीन काल से नृसिंह भगवान को भोग देसी घी में बने खाने से ही लगता है। एक दिन मन्दिर में एक कनोत्रा परिवार दर्शनों के लिए आया और उन्होंने अपना भोजन आप बनाया। भोजन डालडे घी से बनाया गया। इन्होंने भोग लगवाने कि इच्छा जाहिर की। पुजारी के रोकने पर भी वह नहीं माने और डालडे में बने खाने से ही भोग लगाने के लिये थाल

सजाया गया। अभी कनोत्रा थाल सजा ही रहा था कि वहां थाली में एक नाग आकर बैठ गया। यह नाग उतनी देर थाली में बैठा रहा जब तक नृसिंह भगवान को भोग नहीं लगाया गया। मन्दिर में सभी ने क्षमा याचना की। जो भी श्रद्धालु यहां आकर भगवान से कोई प्रार्थना करता है तो उस की इच्छा पूरी होती है।

सारे डुग्गर-प्रदेश से श्रदालु यहाँ दर्शनार्थ आते रहते हैं। पद्म महापुराण में लिखा है कि 12 सूर्यों को धारण करने वाले नृसिंह भगवान भक्तों का अभीष्ट सिद्ध करने के लिये महात्मा नृसिंह के रूप में प्रकट हुए थे।

नृसिंह धाम घगवाल में लगने वाले पर्व एवं मेले आदिकाल से ही भगवान नृसिंह या भगवान विशेषों से जुड़े हुए हैं। मुख्य उत्सव इस तरह हैं :-

1. **नृसिंह चतुदर्शी :–** यह उत्सव वैशाख शुल्क चतुदर्शी को मन्दिर में ही मनाया जाता है। इसी दिन चतुर्थी चतुर्भगा में मूलस्थान (अब का नाम मुलतान, पाकिस्तान) में नृसिंह भगवान प्रगट हुए थे और उसी दिन उन्होंने दैत्यराज हिरणकशिपु को अपने नखों से अपनी जांघों पर रख कर मारा था और भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी। इस दिन मन्दिर में विशेष पूजा-अर्चना होती है। पद्म महापुराण में इसका सारा महत्त्व लिखा है।

2. **कृष्ण-जन्मअष्टमी :– यह** मेला भाद्रपद मास की कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन लगता है और अमावस तक आठ दिन चलता है। अष्टमी की रात को भगवान की विशेष पूजा होती है। दिन-भर लोग व्रत रखते हैं। बहुत से लोग निराहार व्रत भी रखते हैं और रात को चन्द्रमा के दर्शन कर के पूजा-अर्चना के बाद ही फलाहार लेते हैं। इस व्रत को ''ठाकुरों का व्रत'' भी कहते हैं। दूर-दूर से लोग आधी-रात तक मन्दिर में ही कीर्तन करते रहते हैं और चरणामृत लेकर अपने-अपने घरों को जाते हैं। यहां पर बना हुआ सरोवर पानी से भरा रहता था। बाहिर से आए हुए लोग गंगा जल की तरह सरोवर का जल अपने घरों को ले जाते थे। मेले में एक अस्थाई बाजार भी लगता है, जिस में मिठाई की दुकानें, कपड़े और मनिहारी के सामान की दुकानें और पालने आदि सजाए जाते हैं। मेले में बहुत चहल-पहल होती है। इस दिन दंगल भी होता है।

3. **दशहरा :–** यह मेला असूज के नवरात्रों में शुरू होकर विजयदशमी तक रहता है। रात को रामलीला होती है। विजय दशमी के दिन रावण, मेघनाथ और कुम्भकर्ण के पुतले जलाए जाते हैं और रात को राजतिलक होता है, दस दिन बड़ी रौनक होती है। झांकियां भी निकाली जाती हैं।

4. **मेला रथ खड़ा :-** यह मेला 13 पौष को हर साल लगता है। प्राकृतिक नियमानुसार इस दिन सब से लम्बी रात होती है और सब से छोटा दिन। इसके बाद दिन बढ़ने लगते हैं। दूर-दूर पहाड़ों से लोग यहाँ आते हैं। आम चीजों की स्थाई और अस्थाई दुकानें भी लगती हैं और, मन-बहलाने के खेल जैसे हिन्डोले और नशानेवाजी के सामने के अतिरिक्त रामनगर, भद्रवाह, किशतवाड़ और बनी के बने हुए कम्बल, पट्टू और लोइयां आदि भी बिकती हैं और गर्म कपड़ों की भी काफी बिक्री होती है। रात को लोग जगह-जगह गीत गाते हैं। अब से कोई तीन साल पहले इस मेले पर बहुत बड़ा यज्ञ (लंगर) का आयोजन किया जाता था

और तमाम लोग वहीं खाना खाते थे। लेकिन आजकल इतना बड़ा यज्ञ नहीं होता। क्योंकि यह काम अब स्थाई और अस्थाई ढाबों ने ले लिया है।

5. होली और होलिका दहन :- होलिका दहन की प्रथा तो नृसिंह अवतार के समय से ही चली आ रही है। पुराणों की कथा के अनुसार दैत्यराज हिरण्यकशिपु की एक बहन थी जिसका नाम होलिका था। उसने भगवान से आग में न जलने का वरदान लिया था। हिरण्य-कशिपु ने प्रह्लाद को मारने के लिये एक षड्यन्त्र रचा। होलिका प्रह्लाद को लेकर चिता में बैठ गई। जब चिता को आग लगायी गई, तो हुआ उल्टा, होलिका जल गई और प्रह्लाद बच गया। इस के उपरान्त त्रेता युग में भगवान श्रीकृष्ण ने भी खूब होली खेली। यह पर्व बसंत ऋतु के आने का भी संकेत देता है। मन्दिर में और सारे घगवाल में जम कर होली खेली जाती थी और पूर्णिमा के दिन होलिका दहन किया जाता है। यूं तो डुग्गर-प्रदेश में नृसिंह भगवान के बहुत मन्दिर है लेकिन इस मन्दिर की शोभा और महानता का अलग ही है इसीलिए तो इसे नृसिंह भगवान का सिद्धपीठ एवं तीर्थ माना जाता है।

जम्मू कश्मीर की रियासत के वानी महाराज गुलाब सिंह ने दान किया और उन्होंने कहा यह दान की रकम और वस्तुएं गरीबों में बांट देना। इस दान का ज़्यादा हिस्सा महाराज रणवीर सिंह ने नृसिंह मंदिर घगवाल में भेज दिया। जब दान की रकम मंदिर में पहुंची तो श्री 1008 महंत दर्शन दास ने दान लेने से इंकार कर, दान वापिस भेज दिया। महाराज को जब पता लगा तब वह बड़ी दुबिधा में फंस गये और सोचने लगे के हमारे राज्य में कोई ऐसा मंदिर भी है जिसके महंत ने दान की इतनी रकम वापिस भेज दी हो। कहते हैं कि कुछ समय बाद वह खुद दर्शन करने के लिए घगवाल आए और नृसिंह महाराज के दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुए। महाराजा ने महंत को जाते समय कहा कि नृसिंह महाराज का चरणामृत प्रतिदिन उनको जम्मू में भेज दिया करें और जम्मू पहुंचाने का बंदोबस्त उन्होंने स्वयं कर दिया। महाराज रोज यह चरणामृत लेकर ही भोजन करते। कई बार चरणामृत देर से पहुंचता तो वह इंतज़ार करते और भोजन के लिए भी देर हो जाती।

इसीलिए सभी दरबारियों और महाराजा रणवीर सिंह ने महंत की नृसिंह महाराज का वास जम्मू में करवाने के लिए प्रार्थना की। जब महाराज रणवीर सिंह घगवाल आए तब महंत दर्शन दास ब्रह्मालीन हो गए थे। ऐसे जम्मू पंजतीर्थी में नृसिंह मंदिर का निर्माण करवाया गया। पंजतीर्थी नृसिंह मंदिर का निर्माण महंत श्री 1008 मोहनदास की देख-रेख में हुआ। लगभग इसी समय नृसिंह मंदिर घगवाल में एक पाठशाला का निर्माण हुआ और यह इमारत नानकशाही ईंट के साथ (चूने-सूर्खी) से बनाई हुई है जो मंदिर के एक तरफ अभी भी मौजूद है और इस पर छात्रावास लिखा हुआ है। इस पाठशाला में हिन्दी, संस्कृत और कर्मकांड की शिक्षा दी जाती थी। इस पाठशाला के आखरी आचार्य श्री चतुभुर्ज थे।

ooo

संस्मरण

रेकी

❑ कांति सिंह चौहन*

इस बार अमेरिका प्रवास के दौरान मुझे सेन-होज़े में रहने का मौका मिला क्योंकि मेरा बेटा वहीं रह रहा था। यह इलाका केलिफोर्निया राज्य के उत्तर-पश्चिम में स्थित है। अर्थात् न गर्मी न सर्दी। पूरे वर्ष यहां सुहावना मौसम रहता है। समुद्र के तट पर बसे होने के कारण यहाँ समुद्री-झीलें (लाँगून) भी बन गई हैं, जिसके तीन ओर सुन्दर विस्तृत पार्क में नौका-विहार के इलावा विभिन्न प्रकार के खेलों एवं सैर की सुविधाएं उपलब्ध हैं।

सैन-होज़े के रिवर-ओक नामक स्थान के 'एवलोन' नामक कम्यूनिटी एपार्टमेन्ट में हमारा घर था। वहाँ मैं छ: माह (अक्टूबर 2005 ई० से मार्च 2006 ई०) तक रही थी। इस अवधि में सुबह-शाम सैर करने ज़रूर जाया करती थी। हमारे एपार्टमेन्ट के सामने ही सड़क के दूसरी ओर 'ऐलेन' नामक विशाल कम्यूनिटी एपार्टमेन्ट बसा हुआ था जिसमें हज़ारों की संख्या में किराए के लिए मकान बने हुए थे। कुछ विशाल इमारतें तो सात-सात मंज़िल की थीं। 'ऐलेन' का लिज़िग ऑफिस सामने ही सड़क के साथ था। लिज़िग ऑफिस के दाहिनी ओर दो कृत्रिम तालाब बने हुए थे जिसके मध्य छोटे-छोटे अनेक फव्वारे सुशोभित थे, जो रात-दिन चला करते थे। उसके बायीं ओर लिज़िग ऑफिस के सामने स्वीमिंग पूल था, पीछे की ओर हरितिमा अच्छादित विशाल पार्क था तो दायीं ओर हरे-भरे घास एवं पेड़-पौधों से सुशोभित कोई सत्तर-अस्सी फुट ऊँची पहाड़ी थी। यह सारा भू-भाग रात्री के आगमन की सूचना पाते ही विद्युत प्रकाश से चमक उठता था।

रिवर-ओक में बड़े-बड़े अहातों में या तो किराए के मकान थे या साफ्टवेयर तथा इलैक्ट्रानिक की विश्वविख्यात कंपनियों के ऑफिस थे। यह सारा इलाका साफ़-सुथरा था। चौड़ी-चौड़ी सड़कें चारों ओर बिछीं हुई थीं, जिसके दोनों और पैदल चलने के लिए पाँच-पाँच फुट चौड़ी और सड़क से एक फीट ऊँची सीमेन्ट की बनी, फुटपाथें थीं। फुटपाथों के एक ओर यदि तारकोल की चौड़ी सड़कें थी तो दूसरी ओर हरी-हरी घास लगी थी, जिसके बीच-बीच में ऊँचे-ऊँचे ओक या चिनार के पेड़ और सजावटी फुलों के झाड़ लगे थे। सुबह-शाम खुशनुमा मौसम होता था। शहर की गहमा-गहमी से दूर इस इलाके में सुबह-शाम लोग पैदल उन फुटपाथों पर सैर करते हुए या जागिंग करते हुए नज़र आते थे।

नवम्बर-दिसम्बर के महीने में यद्यपि ठंड कुछ बढ़ जाती थी फिर भी एक स्वेटर पहन कर आराम से बाहर निकला जा सकता था। प्रात: छ: बजे के लगभग जब मैं सैर करने को निकलती थी तब उषा की लाली पृथ्वी और आकाश दोनों को लाल रंग में रंग रही होती थी। पर उस दिन बे-ध्यानी में मैं कुछ जल्दी ही घर से निकल पड़ी थी। बाहर सर्वत्र विद्युत प्रकाश के कारण उजाला था। परन्तु न गाड़ियों के चलने की आवाज़ थी और न पक्षियों की

* *770-ए, गाँधीनगर जम्मू जे.एण्ड के 180004*

चहचहाहट। बाएं हाथ में बंधी घड़ी देखने पर मैंने पाया कि उस समय पौने पाँच बज रहे थे। पहले सोचा घर वापस लौट चलूं फिर यह सोचकर आगे बढ़ गई कि ऐलेन के जलाशयों के आस-पास रोशनी है एवं सुरक्षा की व्यवस्था भी, अतैव वहीं थोड़ी देर योगा कर सकती हूँ। वैसे रिवर-ओक का सारा इलाका सुरक्षित है। आधी-रात भी बाहर निकलने में कोई खतरा नहीं था।

जलाशयों के पीछे बने विशाल पार्क में पहुँचने पर देखा कि दो अंग्रेज़ औरतें और एक पुरुष आसन बिछाकर योगा करने में व्यस्त थे। इसलिए उनसे कुछ दूरी पर बने सीमेन्ट के चबूतरेनुमा स्थान पर बैठकर मैं भी प्राणायाम करने लगी थी। उसके बाद योगा के कुछ आसन करके मैं जलाशयों के किनारे बने बेंच कर आकर बैठ गई। बैठते ही मेरी दृष्टि सामने बनी छोटी पहाड़ी पर गई तो यह देख कर चौंक गई कि वहाँ एक महिला पद्मासन में ध्यान मग्न बैठी थी। उनकी कद-काठी तथा पहनावे सें लगा कि वे जापानी या चाइनिज़ होंगी। उस पहाड़ी के शिखर तक जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी थीं जिसके किनारे विश्राम करने के लिए लोहे के बेंच थोड़ी-थोड़ी दूरी पर स्थित थे। उपर से नीचे तक विद्युत खम्बे लगा कर प्रकाश व्यवस्था की गई थी।

कुछ समय तक ऊपर बैठी उस महिला को देखने के बाद मैंने आँखें नीची कर लीं क्योंकि जानती थी कि इस तरह किसी को गौर से देखना यहाँ अभद्रता मानी जाती है। कुछ ही देर बाद पक्षियों के कलरव की ध्वनि से समूचा प्रदेश मानो चहक उठा और पूर्वांचल में सूर्य की लालिमा छाने लगी। मैं उठकर जलाशय के किनारे सैर करने लगी कि सामने पहाड़ी पर बनी सीढ़ियों से नीचे उतरती वे ध्यानास्त महिला दृष्टिगोचर हुई। नीचे उतर कर जब वे मेरे नज़दीक से गुज़रीं तो हमारा आमना-सामना हुआ इसलिए अमेरिकन शिष्टाचारानुसार हम दोनों ने एक-दूसरे का अभिवादन किया और वे आगे बढ़ गईं। निकट से देखने पर मैंने पाया कि ने जापानी नहीं वरन् चाइनिज़ थीं। उनकी उम्र सत्तर-पचहत्तर तक होगी परन्तु स्फुर्ति युवतियों की तरह थी।

उसके उपरान्त लगभग साढ़े पाँच बजे तक योगाभ्यास करने हेतु मैं ऐलेन के पार्क में चली जाती थी। प्रतिदिन मैंने उक्त चाइनिज़ महिला को पहाड़ी की शिखर पर बैठे या उतरते हुए देखा था। एक-दो बार उनसे आमना-सामना हुआ पर चाहकर भी अभिवादन के शिष्टाचार से आगे बढ़ने का साहस मुझे नहीं हुआ।

उस दिन मन कुछ खिन था। अतः सिर्फ कुछ देर प्राणायाम करके मैं जलाशय के किनारे एक बेंच पर आकर बैठ गई थी। विचारशून्य-सी बैठी मैं जलाशय के हिलते हुए जल में आकाश और पहाड़ी का प्रतिबिम्ब निहार रही थी कि 'गुडमार्निंग' की ध्वनि से चौंक गई। यन्त्रवत् उस अभिवादन का प्रत्युत्तर देते हुए सिर उठाकर देखने पर पाया कि सामने पहाड़ी पर बैठने वाली महिला खड़ी थी। मेरे कुछ कहने के पूर्व ही उन्होंने बेंच पर बैठने की अनुमति चाही और मेरी स्वीकृति पाकर बेंच पर बैठ गई।

बैठने के बाद उनका पहला प्रश्न था-

"क्या आप पाकिस्तानी है?"

"नहीं मैं इंडियन हूँ और आप?" मैंने प्रत्युत्तर एवं प्रतिप्रश्न एकसाथ कर डाला।

"मैं चाइनिज़ हूँ पर सिंगापुर की स्थाई निवासी हूँ।"

"यहाँ अमेरिका में क्या करती हैं?"

"कुछ नहीं। बस अपने पति के साथ रहती हूँ। हम ग्रीनकार्ड-होल्डर हैं। मेरे पति रेकी मास्टर हैं। उनका अपना रेकी सेन्टर है, जहाँ वे लोगों को प्रशिक्षित करते हैं और उपचार भी करते हैं। मैं इस काम में उनकी सहायता करती हूँ और सुबह रेकी द्वारा आत्म-उपचार करती हूँ।" फिर थोड़ा रुक कर उन्होंने पूछा–"क्या आप भी यहाँ रेकी का अभ्यास करती हैं?"

"नहीं मैं योगाभ्यास करती हूँ।" प्रत्युत्तर में मैंने कहा।

"पर मैंने कई बार आपको ध्यान मुद्रा में बैठे देखा है।" उन्होंने तपाक से पूछ डाला।

"मैं ध्यान नहीं वरन् प्राणायाम करती हूँ।" मैंने सफ़ाई दी।

इस पर वे हंसती हुई बोली–"अच्छा!... मैंने सोचा कि आप रेकी करती हैं।"

"रेकी के बारे में मैंने सुना है पर उसका स्पष्ट ज्ञान मुझे नहीं है। रेकी के बारे में कुछ ज़्यादा मैं अभी तक पढ़ भी नहीं पायी हूँ।"

"पर अमेरिका में रेकी बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ उच्चकोटि के रेकी मास्टर को पैसा और शोहरत दोनों मिलता है?"

"वह कैसे?"

"रेकी के प्रशिक्षण और उपचार दोनों में ही आर्थिक लाभ है।"

"इसका मतलब है 'रेकी'–कमाई का स्त्रोत है।"

"नहीं, रेकी सिर्फ कमाई का स्त्रोत नहीं है–" उन्होंने विरोध करते हुए कहा–"रेकी एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है, शक्ति के आदान-प्रदान (प्रिसींपल ऑफ एनर्जी एक्सचेन्ज) का। हमारे गुरु डॉ. उशुई ने अपने अनुभव से पाया था कि रेकी मास्टर को अपने विद्यार्थी या मरीज को जीवन-शक्ति प्रदान करते समय उनसे बदले में पैसा, वस्तु या शुभभावना अवश्य लेनी चाहिए तभी रेकी प्राप्त करने वाला रेकी की शक्ति के महत्त्व को समझेगा और उसका लाभ प्राप्त कर सकेगा।"

"वैसे आप बतायेंगी कि रेकी है क्या?"

"रेकी एक जापानी शब्द है जो रे (Rei) और की (Ki) शब्दों के मेला से बना है। 'रे' का अर्थ है विश्वव्यापी जीवन-शक्ति और 'की' का अर्थ है 'जीवन-शक्ति'। विश्वव्यापी जीवन-शक्ति को आप ईश्वरी-शक्ति कह सकती हैं जो हर व्यक्ति की समस्या को जानती है और उसका उपचार कर सकती है जो सारे ब्रह्मांड में, उसके अणु-अणु में व्याप्त है। की-(Ki) या जीवन-शक्ति को हम चाइनिज़ ची (CHI) नाम से जानते हैं और आप इंडियन प्राण (PRANA) नाम से।" फिर विषयान्तर करते हुए वे बोली–"रेकी की चर्चा बहुत हो चुकी अब यह बताइए कि आपका नाम क्या है?"

''मेरा नाम कांति है पर पूरा नाम कांति सिंह चौहान है। आपका नाम क्या है?'' मैंने प्रत्युत्तर देते हुए पूछा।

''मेरा नाम है सू-फेई। आप से मिलकर बहुत खुशी हुई। अब चलती हूँ।'' उन्होंने खड़े होते हुए कहा-''फिर मिलेंगे।'' उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर विदा ली।

''ज़रूर मिलेंगे।'' मैंने खड़े होते हुए कहा-''रेकी का जो ज्ञान आपने मुझे दिया उसके लिए मैं आपको हृदय से धन्यवाद करती हूँ।''

उसके उपरान्त कई बार वे मिलीं पर औपचारिक अभिवादन एवं कुशल-क्षेम से आगे बात न बढ़ सकी। एक बार मैंने उनसे कहा भी था कि मुझे उनसे रेकी के बारे में कुछ और जानने की इच्छा है, तो उन्होंने हंसकर कहा था कि उचित अवसर मिलने पर वे मेरी जिज्ञासाओं का समाधान अवश्य करेंगी। कई बार वे अपने पति डॉ. वांग शिआओहू के साथ सैर करती हुई शाम को भी मिलीं पर शिष्टाचारवश हेलो कह कर आगे बढ़ गई थीं। मैं सोचती ''सू-फेई जब अकेली मिलती हैं तो सस्नेह मेरा हाथ पकड़ कर अभिवादन करती हैं पर जब पति के साथ होती हैं तो सिर्फ 'हाय' कह कर आगे बढ़ जाती हैं। उनके व्यवहार में इस परिवर्तन का कारण क्या है?''

एक दिन उन्होंने स्वयं मेरी इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा था कि जब अपने पति के साथ होती थी तो अधिक देर तक पति को प्रतीक्षा हेतु खड़ा करना उन्हें ठीक नहीं लगता इसलिए औपचारिक अभिवादन से आगे वे नहीं बढ़ पातीं। अमेरिका में रहते हुए मुझे ज्ञात हुआ था कि चाइनिज़ औरतें अति पतिपरायणा होती हैं। वे अपने पति की सेवा उसे ईश्वर मान कर करती हैं। तभी यहाँ के अंग्रेज चाइनिज़ लड़कियों से शादी करना पसंद करते हैं। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण भी मुझे वहां मिल गया था जब कई बार मैंने अंग्रेज पुरुष की बगल में दुबली-पतली छोटी-सी चाइनिज़ पत्नी को उनके बच्चों के साथ घूमते या बैठे देखा तो एक बार जब मैंने सू-फेई से यह जानना-चाहा क्या वास्तव में चाइनिज़ स्त्रियों अपने पति की बहुत सेवा करती हैं? तब सू-फेई ने अपनी स्वीकृति देते हुए बताया था-चाइनिज़ स्त्रियाँ अपने पति को ईश्वर समझती हैं, मालिक समझती हैं।

एक शुक्रवार को सू-फेई मुझे ढूंढ़ती हुई पार्क में आईं और बताया कि उनके पति पाँच दिन के लिए सिंगापुर जाने वाले थे। इसलिए शनिवार को सुबह वे एक डेढ़ घंटे मेरे साथ बिता सकती थीं।

दूसरे दिन प्रातः साढ़े-पाँच बजे ऐलेन के कृत्रिम तालाब के किनारे बैंच पर बैठी मैं सू-फेई की प्रतीक्षा कर रही थी। लगभग पौने-छः बजे पहाड़ी से उतर कर सू-फेई मुझसे मिलीं। औपचारिकता के पश्चात् मैंने रेकी के प्रादुर्भाव के बारे में जानकारी चाही थी।

प्रत्युत्तर में सू-फेई ने बताया-''रेकी एक स्पर्श चिकित्सा है जिसमें हाथों से छूकर किसी रोग का उपचार किया जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जापान में इसकी खोज डॉ. मिकाओ उशुई ने की थी। वे एक उन्नत बौद्ध साधक थे। 'रेकी' जिस प्राचीन बौद्ध पांडुलिपि से लिया गया है उसके शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि 'रेकी' आत्मज्ञान या बुद्ध-प्रकृति को प्राप्त करने की दिशा में पहला चरण है। उक्त पांडुलिपि ''द तंत्रा ऑफ द

लाइटनिंग फ्लैश दैट हील्स द बाड़ी एण्ड इल्युमिन्स द माइन्ड'' से प्रेरणा लेकर डॉ. उशुई ने 'रेकी' की ऐसी सरल पद्धति का विकास किया, जिससे तमाम साधारण जन स्वयं अपना उपचार कर सकें। यदि कोई साधना करना चाहता है या परमात्मा की सिद्धि प्राप्त करना चाहता है तो भी उसे स्वस्थ शरीर और दृढ़ मन की आवश्यकता पड़ती है, जो 'रेकी' से संभव हो सकता है। डॉ. मीकाओ उशुई ने, जो कि एक जापानी डाक्टर थे, रेकी की पुन: खोज उन्नीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में की थी।

वास्तव में सातवीं शताब्दी में जो दो जापानी बौद्ध धर्म को जापान लाए थे, उन्होंने चीन में किसी इन्डियन बौद्ध शिक्षक से प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उनमें से एक का नाम कुकाई था। कुकाई ही बौद्ध धर्म की एक पांडुलिपि जापान लाए थे। जिसका नाम था 'द तंत्रा ऑफ द लाइटनिंग विच हिल्स द वॉडी एण्ड एल्युमीन्स द माइन्ड'। किन्तु बाद में इस पुस्तक का ज्ञानी कोई जीवित शिक्षक जापान में न था। अतैव इक्कीसवीं सदी में डॉ. मीकाओ उशुई (जिन्हें कुकाई का अवतार भी माना जाता है।) इंडिया (भारत) गये थे और वहां संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया था। तदुपरान्त उन्होंने तिब्बत जाकर पवित्र तिब्बती कमल-सूत्रा (Sacred Tibetan Lotus Sutras) के अध्ययन से उपचार की अद्‌भुत शक्ति को समझा। फिर जापान आकर महात्मा बुद्ध की तरह ध्यान (मेडिटेशन) करने लगे। अन्त में जापान के कोयटो नामक प्रदेश के निकट स्थित पवित्र 'कुरियामा' नामक पर्वत पर निराहार रहकर इक्कीस दिनों तक बुद्ध की तरह ध्यान में बैठकर उन्होंने साधना की थी। इक्कीसवें दिन सुनहरी रोशनी (गोल्डेन लाईट) पवित्र केईकी चिन्ह (सेक्रेट केईकी सीम्बल) के साथ उनके मस्तक पर प्रकाशित हुई और उन्होंने दैवी ध्वनि सुनी। उसके बाद ही उन्हें रेकी की शक्ति का अनुभव हुआ था। डॉ. उशुई छब्बीस नैतिक सिद्धान्तों का प्रयोग चिकित्सक के रूप में करते थे जो साधारण साधकों के लिए जटिल थे। अतैव मेजी सम्राट के उन पाँच सिद्धान्तों को उन्होंने अपनाया जो जनता के जीवन-स्तर को उठाने के लिए घोषित थे। डॉ. उशुई द्वारा प्रेषित रेकी के पाँच सिद्धान्त (स्पीरिच्युअल प्रिन्सिपल ऑफ रेकी) इस प्रकार हैं-

1. पहला सिद्धान्त है- केवल आज के दिन मैं आभार की मनोवृत्ति अपनाऊँगा अर्थात् हमारे पास जो भी पारिवारिक सुख, प्राकृतिक संपदा एवं सौंदर्य तथा शिक्षा या प्रतिभा है वह काफी है।

2. दूसरा सिद्धान्त है- ''केवल आज के दिन मैं चिन्ता नहीं करूँगा''-जो बीत गया उसकी चिन्ता व्यर्थ है। भविष्य के बारे में चिन्ता करना तो समय की बर्बादी है। जीवन की सारी घटनाएँ शरीर और मन द्वारा होती हैं। मनुष्य न मन है न शरीर, फिर चिन्ता किस बात की। अपनी गलती से सीख लें। हीन भावना न पालें।

3. तीसरा सिद्धान्त है-केवल आज के दिन मैं क्रोध नहीं करूँगा। क्रोध तब आता है जब आप अहम् के शिकार होते हैं। क्रोध का आवेग क्षणिक होता है जो स्वयं ठंडा हो जाता है। हम किसी भय के कारण क्रोध करते हैं। यदि हम शांत होकर उस 'भय' को देखेंगे तो क्रोध का आवेग तुरंत शांत हो जायेगा।

4. चौथा सिद्धान्त है- 'अपने प्रतिदिन के कार्य में अपने प्रति ईमानदार (सच्चे) रहिए'- यह एक बुनियादी सिद्धान्त है कि आप अपने प्रति सच्चे रहें, शांतिपूर्वक जीवन यापनार्थ अपने

हृदय की बात सुनें, अपनी संगति का आनंद लें। कभी भी दूसरे व्यक्ति को अपने भावनात्मक एवं मानसिक दायरे में बिना अनुमति के प्रवेश न करने दें। एकांत में प्रकृति के बीच स्वयं से मिलें। संगीत का आनंद लें। जब व्यक्ति आत्म उपचार करेगा तभी दूसरे के प्रति करुणार्थ हो उसका उपचार कर सकेगा।

5. पाँचवा सिद्धान्त है–'केवल आज के दिन समस्त सृष्टि के प्रति दया एवं सम्मान रखूंगा।'–सृष्टि की हर वस्तु जीवंत है, गतिशील है चाहे वह चेतन हो या जड़। स्वयं हमारा शरीर इस संसार में हमारी अभिव्यक्ति का वाहक है यद्यपि हम शरीर नहीं हैं। हमारा शरीर उस चेतना (आत्मा) से निर्देशित होता है जो वास्तव में हम हैं। जिस भौतिक वस्तु (जैसे पेन, चम्मच या कंघी आदि) का हम प्रयोग करते हैं वह हमारी सूक्ष्म ऊर्जा को ले लेता है। यही कारण हैं कि जब हम किसी वस्तु का ठीक से प्रयोग नहीं करते तो वह खराब हो जाती है। जैसे पेन या कार हमारे मूड में होने पर ठीक से कार्य करता है। वास्तव में हम 'यूरी गेनर' की तरह हैं जो अपने मन की शक्ति से चम्मचों को मोड़ लेता था।

उपर्युक्त सिद्धान्त को अपने आचरण का हिस्सा बनाकर ही व्यक्ति दूसरे का भला करने को तत्पर होता है इसलिए रेकी का लाभ उठाने के लिए ये आवश्यक शर्तें भी हैं।

डॉ. उशुई बौद्ध धर्म में दी गई मूल शिक्षा के आध्यात्मिक साधनों का उपयोग करके शक्तिपात (फ्लो ऑफ एनर्जी) को सीधे ग्रहण करने में समर्थ हुए थे। रेकी के उपासक डॉ. उशुई से प्राप्त शक्तिपात के सिद्धान्तों को सीखकर अज्ञान से मुक्त होते हैं और तभी मानसिक एवं शारीरिक कष्ट से मुक्त हो पाते हैं। यह सर्वविदित है कि डॉ. उशुई ने अपने संकल्पों एवं करुणा द्वारा प्राचीन देशना के शक्तिपात को फिर से स्थापित करके आगे बढ़ाया था।"

"पर डॉ. उशुई ने रेकी का प्रचार सारी दुनियाँ में कैसे किया?" मेरा अगला प्रश्न था।

"डॉ. मिकाओ उशुई के उन्नीस प्रिय शिष्यों ने उनके द्वारा निर्धारित रेकी को विश्व-भर में फैलाया था। इसके इलावा डॉ. हयाशी एवं टकाटा आदि ने भी रेकी का प्रचार-प्रसार किया क्योंकि उनके सिद्धान्त 'द तंत्रा ऑफ लाइटनिंग फ्लैश विच हील्स द बॉडी एण्ड इल्युमिन्स द माइन्ड' तथा डॉ. उशुई की व्यक्तिगत टीकाओं पर आधारित है।

रेकी की लोकप्रियता के कारण अनेक नीम-हकीम भी रेकी मास्टर बन बैठे हैं। बुनियादी तौर पर रेकी मास्टर संयमित और सकारात्मक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति होना चाहिए। जो विश्वव्यापी जीवन-शक्ति की सर्वदा उपस्थिति को अनासक्त रह कर आनंदित हो दूसरों में बांटने की क्षमता रखता हो और प्राकृतिक चिकित्सा की उशुई पद्धति की शक्ति प्रक्रिया को सम्पन्न करने में समर्थ हो।' संक्षेप में रेकी की शिक्षा उसी जीवित गुरू से ली जा सकती है जिसका सीधा संबंध डॉ. मिकाओ उशुई की परंपरा से हो। किताब पढ़कर रेकी नहीं सीखी जा सकती। रेकी मास्टर के पास प्रमाण-पत्र या उपाधी का होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना उसकी योग्यता का। यदि उसने तीन वर्ष तक रेकी की साधना की है और उसका संबंध डॉ. उशुई की परंपरा से है तो भी वह किसी को स्वयं आमंत्रित करके प्रशिक्षित करना नहीं चाहेगा और न उपचार हेतु किसी को बुलाएगा।

सच्चे रेकी मास्टर के समीप जाने पर आपको शांति का अनुभव होगा, हीनता की भावना नहीं जागेगी। उसकी प्रेरणा से आपको अनुभव होगा कि आप स्वयं विश्वव्यापी जीवन-शक्ति हैं अर्थात् आपको स्वत: करुणा के सारतत्व की प्राप्ति हो जायेगी क्योंकि करुणा ही रेकी सारिणी को गतिशील बनाने में सहायक होती है।

''पर रेकी सीखने की प्रक्रिया क्या है?'' मेरा प्रश्न था।

प्रत्युत्तर मिला-''रेकी प्रशिक्षण में तीन डिग्रियाँ होती हैं। पहली डिग्री के स्तर पर शक्तिपात की चार क्रियाएँ होती हैं। दूसरी तथा तीसरी डिग्री के स्तर पर शक्तिपात (फ्लो ऑफ एनर्जी) की एक-एक क्रिया होती है। रेकी क़े पाँच सिद्धान्तों को आत्मसात करके ही कोई रेकी का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकता है।''

प्रथम एवं द्वितीय डिग्री के मध्य कम-से-कम इक्कीस दिनों का अन्तर होना चाहिए। परन्तु द्वितीय और तृतीय डिग्री के मध्य कम-से-कम छ: से आठ माह का समय अवश्य होना चाहिए। उसके उपरान्त कम-से-कम तीन वर्ष तक साधना करके ही वह दूसरों को प्रशिक्षित कर सकता है।

''पर रेकी से उपचार कैसे किया जाता है।'' मैंने पूछा।

प्रत्युत्तर में सू-फेई ने बताया- ''रेकी में माना जाता है कि कोई किसी का उपचार नहीं करता। वास्तव में उपचार तो विशुद्ध करुणा वरदान है। उपचार करने वाला व्यक्ति स्वयं को शुद्ध करके विश्वव्यापी शक्ति को अपनी हथेलियों पर ग्रहण करता है और उसके हाथ के स्पर्श मात्र से रोगी का शरीर वह उर्जा खींच लेता है जिसकी उसको ज़रूरत होती है। लेकिन रोगी को रेकी ग्रहण करने की संभावना के प्रति स्वयं को तैयार रखना पड़ता है। तभी उसका शरीर अपनी जन्मजात बुद्धि के बल पर वह सब ग्रहण कर लेगा जिसकी उसे ज़रूरत है।

स्पष्ट है रेकी के उपचारक को उर्जा प्रवाहित करनी पड़ती है फिर उसके स्पर्श-मात्र से दूसरे व्यक्ति में स्वत: उर्जा प्रवाहित हो जाती है। रेकी उपचारक पहले शरीर के सभी प्रमुख अंगों तथा महत्त्वपूर्ण अंत: स्त्रावी ग्रन्थियों पर हाथ की स्थितियों का सदुपयोग करके पूर्ण शरीर का उपचार करता है फिर शरीर के विशिष्ट व्याधिग्रस्त अंगों का उपचार पूरा करने के लिए उसी का स्पर्श करता है। हमारे भौतिक (शारीरिक) ढांचे में जो आत्म-उपचार की शक्तियाँ विद्यमान हैं, उन्हें सक्रिय करने के लिए यह आवश्यक है कि पूरे शरीर में जीवन-शक्ति को बढ़ाया जाए क्योंकि अंत:स्त्रावी तंत्र की सभी ग्रंन्थियाँ शरीर को पूर्ण संतुलन में रखने के लिए मिलकर कार्य करती हैं। चूंकि शरीर एक इकाई है इसलिए जब शरीर की जन्मजात आत्म उपचारक शक्ति एकबार गतिशील हो जाती है तो उसका सदुपयोग, शरीर के विशिष्ट व्याधिग्रस्त भाग के उपचार के लिए, आसानी से हो जाता है। ''अंत:स्त्रावी ग्रन्थि आप किसे कहती हैं।'' मैंने जिज्ञासा प्रकट की।

सू-फेई इस पर धीरे से हंसी फिर बोली ''आन्तरिक स्त्राव वाली अनेक ग्रन्थियाँ होती हैं जो हार्मोन बनाती हैं। ये नलिका विहीन ग्रन्थियाँ हैं-हाईपो थैलसम, पीनिचल ग्रन्थि, पिट्यूटरी ग्रन्थि, थाइरॉइड तथा पैराथाइरॉइड ग्रंथियों, थायमस, ऐड्रिनल कार्टेक्स और मेडुका, अग्न्याशय,

अंडाशय [स्त्री में] और अण्डकोष [पुरुष में] ये हार्मोन बनाने के साथ शरीर के अनेकानेक कार्यों को नियंत्रित करतीं हैं। अमाशय, यकृत, आंतों, गुर्दों और हृदय सभी में कोशिका पुंज होते हैं जो रक्त की धारा में हार्मोन छोड़ते हैं। इस तरह से अंत:स्त्रावी तंत्र के अंग बन जाते हैं यद्यपि सही रूप में देखा जाए तो ये स्वयं अन्त:स्त्रावी ग्रंथियाँ नहीं हैं।

''आज रेकी का जो इतना प्रसार-प्रचार हो रहा है उसका कारण क्या है?''

''उसके अनेक कारण हैं। सकारात्मक दृष्टिकोण रखने वाला कोई व्यक्ति महज दो डिग्रियाँ लेकर आत्म-उपचार तो कर ही सकता है, साथ ही दूसरों का भी उपचार कर सकता है। आज लोग यह भी मान रहे हैं कि यदि रेकी द्वारा पीनियल ग्रन्थि को नियंत्रित किया जा सकता है तो बुढ़ापे को भी रोका जा सकता है।''

''बुढ़ापे को रोकने वाली बात लोग किस आधार पर सोचते हैं? मैंने उत्सुकता से पूछा।''

इस पर वे हंसी फिर बोली-''देखो मैं पचासी वर्ष की उम्र में भी जवान लड़कियों की तरह दौड़ सकती हूँ, शायद इसका कारण रेकी द्वारा आत्म-उपचार करने की मेरी चालीस वर्ष पुरानी आदत हो। जहाँ तक बुढ़ापे को रोकने का सवाल है तो यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि शरीर में पीनियल ग्रन्थि एक आन्तरिक घड़ी की तरह कार्य करते हुए शरीर के जैविक लयों को नियंत्रित करती है। यह व्यक्ति के सोने-जागने के चक्र को नियमित करती है। हमें प्रकृति के साथ तालमेल बनाकर रहने की क्षमता प्रदान करती है। हाल में हुए अनुसंधानानुसार पीनियल ग्रन्थी का सर्वाधिक महत्त्व इसलिए है कि यह एक आन्तरिक टाईमर की तरह कार्य करती है। इस भूमिका में पीनियल ग्रन्थी शरीर के लिए वृद्धत्व घड़ी का कार्य करती है, जो वृद्धत्व की प्रक्रिया को रोकने के लिए मेलाटोनिन नामक हार्मोन का स्त्राव करती है। जब तक उक्त हार्मोन का स्त्राव पर्याप्त मात्रा में होता रहता है, तब तक हमारा प्रतिरोध तंत्र दमदार रहता है, थाइरॉयड हार्मोन का स्तर भी ऊँचा रहता है एवं ऊर्जा की मात्रा भी अधिक रहती है। यदि ऐसा ही होता रहा तो बुढ़ापे की व्याधियों से व्यक्ति मुक्त रह सकता है। वैसे मेलाटोनिन की यथेष्ट मात्रा मनुष्य शरीर में बीस वर्ष तक अधिक रहती है और साठ वर्ष के आते-आते आधी रह जाती है। इसी से क्षरण की प्रक्रिया में तेजी आती है जो हमें बुढ़ापे तक पहुँचाती है। यदि मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क स्वस्थ्य रहे तब भी बुढ़ापा देर से आता है पर यदि रेकी द्वारा पीनियल ग्रन्थी को नियंत्रित कर लिया जा सकता तो बुढ़ापे की व्याधि अन्त तक न आती।''

अभी सू-फेई इतना ही बता पाई थीं कि एक भारतीय महिला ने आकर उनका अभिवादन किया। उनका अभिवादन सहर्ष स्वीकार करते हुए वे बोलीं-''ये हैं मीनाक्षी मूर्ति जो मेरे पति डॉ. वांग शिआओहू की शिष्या है।'' फिर वे मुझे इंगित करके बोलीं-मीनाक्षी ये भी इंडियन हैं और रेकी के बारे में जानने को उत्सुक हैं। तुम्हें यहाँ पाकर मुझे प्रसन्नता हुई। वैसे मैंने रेकी के स्वरूप का ज्ञान इन्हें दे दिया है फिर भी मैं चाहूंगी की भविष्य में भी यदि तुम कभी इनसे मिलो और रेकी के बारे में ये कुछ जानना चाहें तो इनको संतुष्ट करने की कोशिश करो।''

''ज़रूर, ज़रूर।'' यदि ये रेकी के बारे में कुछ जानना चाहेंगी तो मैं भरसक इन्हे संतोष जनक उत्तर देना चाहूँगी'' मीनाक्षी ने मुस्कुरा कर कहा।

''दरअसल मीनाक्षी आज शाम की फ्लाईट से मैं एल.ए. (लॉस एन्ज़िलस) अपनी बहन के पास जा रही हूँ। वहाँ कुछ दिन रह कर सिंगापुर जाऊँगी।'' इतना मीनाक्षी से कह कर वे मुझसे बोली -''अब मैं चलती हूँ, आप जब कभी मीनाक्षी से मिलें, रेकी के बारे में अपनी जिज्ञासा प्रकट करने में संकोच मत करियेगा।''

उसके बाद हमसे विदा ले कर सू-फेई वहाँ से चली गई।

बाद में मीनाक्षी मेरी अच्छी सहेली बन गई थी क्योंकि वे मेरे पड़ोस में ही रहती थी और शाम को हम दोनों दो-तीन घंटे साथ-साथ घूमा करती थीं। मीनाक्षी ने मुझे बताया था कि रेकी की प्रथम डिग्री उन्होंने हैदराबाद के किसी रेकी प्रशिक्षक से ली थी परंतु दूसरी डिग्री उन्होंने डॉ. वांग शिआओहू से ली क्योंकि वे सुश्री पॉला हारेन के शिष्य थे। उन्हीं से पता चला कि पॉला हारेन के प्रयत्न से ही रेकी का आज इतना प्रचार-प्रसार हो सका है। दरअसल सुश्री पॉला हारेन जब सन् 1998 के मई महीने में भारत आई थीं, तब मीनाक्षी ने उनके दर्शन किए थे, उनका प्रवचन सुना था, उनकी किताबें पढ़ी थीं। उसी समय से वह उनसे प्रभावित थी। उसने बताया कि दूसरी डिग्री का अभ्यास एक वर्ष तक कर लेने के उपरान्त वह डॉ. वांग शिआओहू से ही तीसरी डिग्री का प्रशिक्षण लेंगी। उसके तीन वर्ष बाद वे भी रेकी प्रशिक्षक बन जायेंगी। मीनाक्षी से पता चला कि सुश्री पॉला हारेन से ही दुनियाँ यह जान पाई है कि जिस रेकी का लोग आज अभ्यास करते हैं वह सात बौद्ध तांत्रिक शिक्षणों में से सिर्फ पहला शिक्षण है। एक दिन सैर करते हुए मैंने पूछा था-''अच्छा यह तो बताइए कि रेकी से इलाज कैसे होता है?''

प्रत्युत्तर में मीनाक्षी ने कहा- ''इस प्रश्न का उत्तर मैं डॉ. उशुई के शब्दों में देना चाहूँगी, रेकी हिल्स इनडाईरेक्टली बाई कमिंग द माइन्ड एण्ड रेज़िग द लाइफ फोर्स एनर्जी।''

''आप स्वयं रेकी द्वारा अपना या दूसरों का उपचार करने के लिए क्या और कैसे कार्य करती हैं?''

''मैं सुबह चार बजे उठकर नहा-धोकर रेकी के लिए एकांत में बैठ जाती हूँ। सर्वप्रथम मैं नीचे से ऊपर तक अपने चक्रो को स्वच्छ करती हूँ। उसके बाद उस विश्वव्यापी शक्ति का आह्वान करती हूँ जो मेरे अन्दर और बाहर सर्वत्र विद्यमान है। यह शक्ति जब मुझे उर्जावान बना देती है तब अपने हाथ की हथेलियों से मैं स्वयं अपना उपचार करती हूँ, दूर रहने वाली अपनी बेटियों को भी रेकी भेजती हूँ। घर में साथ रहने वाले बेटे को भी रेकी भेजती हूँ ताकि वह स्वस्थ रहें।''

''क्या इससे किसी को फायदा हुआ है? हाँ हुआ है। मेरे पति के पैर में पिछले पाँच महीने से एक बड़ा-सा फोड़ा हो गया था। जब पिछली बार दीपावली में आप मेरे घर आयीं थीं तब उन्होंने आपके बेटे से उसी फोड़े से होने वाली तकलीफ की चर्चा भी की थी।

मैंने स्वीकार किया-''हां, बेटे ने बताया था कि मूर्ति अंकल पैर के फोड़े का इलाज चार महीने से करा रहे हैं पर डाईबिटीज़ की वज़ह से वह लाइलाज बना हुआ है।''

''आपके बेटे ने सही बात कही थी। मेरे पति रेकी के महत्त्व को नहीं समझते इसलिए मैंने रेकी का प्रयोग उन पर नहीं किया। बेटे के कहने पर जब इलाज के लिए उन्होंने स्वयं मुझसे कहा तब इक्कीस दिन तक अपना हाथ उनके फोड़े पर रख कर रेकी की विधि से मैंने उर्जा प्रवाहित होने दी। वे डाक्टर की दवा पूर्ववत् लेते रहे थे फिर पूरे इक्कीस दिन तक रेकी के उपचार के बाद उनका घाव एकदम सूख गया।''

''मतलब रेकी के उपचार का प्रत्यक्ष प्रमाण इससे अधिक नहीं मिल सकता ?''

''रेकी का महत्त्व अनुभव की वस्तु है। रेकी का उपचारक सिर्फ माध्यम होता है। उस सर्वव्यापी परम् शक्ति से जब वह मरीज के रोगग्रस्त अंग का स्पर्श करता है तो उर्जा स्वयंमेव उसके शरीर में प्रवाहित होकर उसका इलाज करती है।''

''जब रेकी की साधना करते हुए आप उर्जा प्राप्त करती हैं तब आपको कैसा लगता है?''

''मेरे हाथ की हथेलियाँ गर्म हो जाती हैं एवं दोनों भौहों के मध्य का माथा गर्मी से दहकता हुआ-सा लगता है।'' फिर उन्होंने अपने हाथ से मुझे छुआ तो लगा कि उनका हाथ तेज़ बुखार के कारण गर्म है। उन्होंने अपने माथे पर मेरा हाथ पकड़ कर लगाया तो उनका माथा तवे की तरह गर्म था। उस समय पार्क में बने एक बेंच पर हम बैठीं थीं। मीनाक्षी ने हठात् पूछा कि क्या मुझे शरीर में कोई तकलीफ है? मेरे यह बताने पर कि मुझे बाएं घुटने में अत्याधिक दर्द रहता है। उन्होंने अपने दोनों हाथ आँखें बन्द करते हुए मेरे उसी घुटने पर रख दिया। मुझे गर्मी तो नहीं लगी पर बिजली के करंट का हल्का-सा झटका-सा लगा और घुटने पर सिहरन का अनुभव हुआ। पूछने पर जब मैंने मीनाक्षी को अपना अनुभव बताया तो वे बोलीं कि पंद्रह मिनट पूर्व ही वे रेकी साधना से उठ कर आयीं थीं, अतैव रेकी उर्जा तव भी उनकी हथेलियों में प्रवाहित हो रही थी।

मीनाक्षी के साथ चार महीने कैसे बीत गये पता ही न चला। मार्च महीने में जब मुझे भारत वापस आना था तो उन्होंने मुझे रेकी से संबंधित एक किताब, टवंटीवन पावर टूल्स ऑफ रेकी' भेंट स्वरूप देते हुए कहा था- ''इस किताब को पढ़कर रेकी के इक्कीस टूल्स का अभ्यास करियेगा तब आपको शारीरिक व्याधियों से कष्ट कम होगा और मानसिक शांति तो मिलेगी ही। उसके बाद यदि कोई अच्छा रेकी मास्टर मिल जाए और आप रेकी सीखने को उत्सुक हों तो प्रथम दो डिग्री तक प्रशिक्षण प्राप्त करके अभ्यास करियेगा।''

रेकी की उस पुस्तक को पढ़ने के बाद लगा कि डॉ. उशुई के रेकी के पाँच महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की व्यवहारिक व्याख्या थी उस पुस्तक में।

ooo

दोहा सप्तक

❑ डॉ. निर्मल विनोद*

घोषित रिश्ते हैं बहुत और अघोषित चंद।
नाम-रहित सम्बन्ध ही भेंट करें मृदु छंद॥

प्रेम-कुलांचें भर रहा मन का हिरना मीत।
और भला क्या सीखनी, हमें प्रीत की रीत॥

मन में तेरे प्यार का, बना रहा संकल्प।
देख सुझा मत तू मुझे, कोई नेह-विकल्प॥

रोम-रोम में प्यार का, गूँज रहा संगीत।
तू है तेरा प्यार है, मन में मेरे मीत॥

हमने सूरज, चांद को, भेज रखा संदेश।
गाँव हमारे भेजियो, इक सच्चा दरवेश॥

धुआं-धुआं वातावरण, सौ-सौ परतें धूल।
मटमैले सपने हुए, चुभें आँख में शूल॥

राखी बाँध गयी हवा, करते यह फ़रियाद।
जंगल मेरे मायके, रहें हरे-आबाद॥

०००

दोहा पंचक

अहसासों में बो गये, पीले, लाल गुलाब।
'निर्मल' फिर आये नहीं, ऐसे गये जनाब॥

चिन्ता चिता समान है, हम जानें सरकार।
लेकिन पटकें तो कहाँ सिर पर सौ मन भार॥

भस्मासुर मौसम हुआ, रावण-रावण राज।
रूप-मोहनी चाहिए, राम हमें फिर आज॥

पता कलैंडर से चले, आया है ऋतुराज।
आपाधापी में जिये, नागर सभ्य समाज॥

दोहों के पंछी उड़े, माप रहे आकाश।
पंख धवल गतिमान हैं, झरता शुभ्र प्रकाश॥

०००

दोहे

❑ डॉ. रामनिवास 'मानव'*

पीड़ा जब मन में बसी, तन-मन हुए अधीर
रोम-रोम गाने लगा, बनकर दास कबीर॥

प्रेम-स्पर्श पाकर बने, पत्थर भी भगवान।
बार-बार कहता यही, मीरा का आख्यान॥

मन मेरा गोकुल हुआ, बजे सुरीली तान।
हर चाहत मीरा बनी, और चाव रसखान॥

जीवन वृन्दावन हुआ, मन मेरा रसखान।
कण-कण बजने लगी, मुरली की मृदु तान॥

फूटी धारा प्रेम की, टूट बहे सब तीर।
मन मेरा मथुरा हुआ, गोकुल हुआ शरीर॥

मन में थोड़ी प्रीत हो, उर में थोड़ी पीर।
सबकी इच्छा थी यही, क्या मीरा, क्या मीर॥

प्यार सारा संसार का, प्यार पीर का कन्त।
ग्राहक हैं सब प्यार के, क्या सूफी, क्या सन्त॥

विष पीकर मीरा रंगी, श्याम सखा के रंग।
जलकर ही तो आग में, पगता प्रेम पतंग॥

चाहे यमुना-कुंज हो, चाहे हो रनिवास।
जिसने पीया प्रेम-रस, रचा उसी ने रास॥

जिसके उर में प्रीत का, हरदम रहे उजास।
उसके घर को जानिये, राम-रम्यता-वास॥

ooo

* *706, सेक्टर-13, हिसार 125 005 (हरियाणा)*

वर्तमान परिवेश के दोहे

❑ डॉ. प्रद्युम्न भल्ला*

गहरे-गहरे घाव हैं पर्वत जैसी पीर।
किसको पड़ी के पोंछ दे, तेरी आँख का नीर॥

मौसम बन कर झूमता, हाथी जैसा मस्त।
किसी को खुशियां बांटता, किसी को करता पस्त॥

मौसम इक एहसास है करो इसे महसूस।
खुशी हमारी ऊर्जा ग़मी करे मायूस॥

आँखें पी-पी थक गई सुंदरता के जाम।
कुदरत के इस रूप को क्या दे कोई नाम॥

शब्दों में क्या कह सका, कुदरत का यह रूप।
पल में बारिश, पल में सर्दी, पल में चमके धूप॥

आओ मिल कर वक्त से मांगे कुछ पल ओर।
ले मौसम अँगड़ाइयाँ, नाचे मन का मोर॥

मौत हमें समझा गई, जग के नव आयाम।
अपने सहारे आप हों, धीरज से लें काम॥

ढाई आखर पढ़ लिए पढ़ा न प्रेम का पाठ।
विषयों में क़ब मिल सका, जीवन का वह ठाठ॥

दोहरा जीवन जी रहे सभी जगत में आज।
सुविधाओं को खोजता घायल हुआ समाज॥

धरती भी बैचेन है और दुखी आकाश।
बापू सिर पर ढो रहा, अब बेटे की लाश॥

तेरा शहर अजीब है, घुटने लगी है सांस।
पीड़ाएं हैं बन गई, सब के गले की फांस॥

ooo

* *508, सैक्टर-20 शहरी संपदा कैथल-136027*

और लौ जलती रही

❑ कृष्णा गुप्ता*

भोलू की पालकी अनगिणत दहेज और चार दासियों सहित ससुराल पहुंची तो घूंघट में ही कर्कश स्वर में जो वार्तालाप उसे सुनाई दिया सुनकर वह चौंक उठी। मां की ममताभरी गोद में बिताए बचपन की यादें बहुत मीठी थीं। भोलू रो-रोकर बेहाल हो चुकी थी। क्योंकि वह जानती थी बचपन की यह क्रीड़ा भूमि अब उससे सदा के लिए छूट रही है।

बापू राजपरिवार से संबंधित थे और अपनी राजपूती शान के लिए यह आवश्यक था कि भोलू के लिए जो ससुराल मिले वह ऊँचे कुल का हो। अतः सुखदेव सिंह के लिए भोलू का नारियल उन्होंने बिना सोचे-विचारे भेज दिया। भोलू की शिक्षा-दीक्षा बहुत कम थी और बाहर के संसार से वह अधिकतर बेखबर थी। उधर सुखदेव सिंह के पिता बक्खूसिंह अच्छे खाते-पीते ऊँचे घराने के राजपूत थे। उनकी छोटी-सी जागीर थी, जिसमें गेहूं, चावल, दालों आदि की खेती होती थी। अपने मकान थे। एक जम्मू में और दो श्रीनगर में। स्वयं वह सरकारी पद पर प्रतिष्ठित थे, छः महीने जम्मू और छः महीने श्रीनगर। दरबार के साथ ही वह भी आते-जाते रहते थे।

सुखदेव अभी बीस वर्ष का ही था। भोलू जब विवाह के बाद आई तो शहर में बड़े चर्चे हुए-बक्खूसिंह राजपरिवार में से पुत्र व्याहकर लाया है। बहुत दहेज लाई है बहू, रूप की कली है, बहुत दास-दासियां लाई है आदि-आदि। परंतु गौरां के स्वभाग से कौन परिचित नहीं था। जिसने आते ही अपनी सास का जीना दूभर कर दिया था और बेचारी सिसक-सिसक कर चल बसी थी। बक्खूसिंह का स्वभाव अपनी मां की तरह ही सीधा था जिससे गौरां शेरनी की तरह सारे घर पर छा गई थी। सुखदेव सिंह के बाद उसने एक-एक करके नौ बेटियां को जन्म दिया तब कहीं जाकर दूसरे बेटे का मुंह देखने को मिला। यह नौ बेटियां भी कुल के रिवाज की शिकार न हुई क्योंकि गौरां के डर के मारे किसी की यह हिम्मत नहीं थी, जो उसकी जन्मी बेटी को जमीन दे देता। अब यह नौ-की-नौ एक से एक दबंग थी, मां की तरह ही, जिनमें से तीन की शादी हो चुकी थी।

भोलू जब द्वार-पूजन की रस्म के बाद घर के भीतर लाई गई तो डोली उठाने वाले चारों कहारों को बाहर ही रोक दिया गया। दासियां भोलू के पीछे-पीछे भीतर आ गईं। दुलहिन के स्वागत में नाइनें बड़े ज़ोर-ज़ोर से सुर लगाकर गा रही थीं। दहेज उठाने वाले भी सामान ला-ला कर अंदर रख रहे थे और लोगों की भीड़ भी खूब जमा थी। शहर और बिरादरी की औरतें बहू का मुख देखते ही खिल उठतीं, शगुन देतीं और तारीफों के पुल बांधने लगतीं। गौरां शगुन के रुपये उठा-उठाकर अपनी झोली में रखती जाती। मगर तारीफें सुन-सुनकर वह नाक भौं सिकोड़ती उसने अपनी जबान की कैंची चलानी शुरू कर दीं। ''छोड़िए बहिन जी, बहुत देखीं हैं, हमारी लड़कियां क्या कम सुन्दर हैं। हमनें भी बड़ा दहेज दिया था, यह कोई

---

* 26 बी/बी गान्धीनगर जम्मू

नया थोड़ा ही लाई है। हुं; मगर हमने चार-चार दासियां साथ नहीं भेजी थीं। बहू को संभालो ऊपर से इन चौकसियों को भी खिलाओ। लड़की के काम करते हाथ न दुख जाएं, भेज दी यहां चार-चार -इनको कौन रखेगा। हमें यह उल्टे-उल्टे लाड नहीं भाते। बहुत लाड किया तो आज ही सिर पर सवार हो जाएगी। राजघराने की है तो हम क्या कम है। अजी क्या बताऊं दुनिया कहती है बहुत खातिर हुई बरात की, अब अंदर की बात क्या बताऊं इन्होंने चिलम मांगी तो पुराने हुक्के में दे दी, बताओ भला हम कोई ऐरे-गैरे थे। हूं, बड़े होंगे तो अपने घर, लड़की दी है बड़ा एहसान किया है हम पर... आगन्तुक औरतों ने भला इसी में समझा कि चुपके-चुपके निकल जाएं। मगर गली में आकर सबके मुंह खुल गए, अरे कैसी बदज़ात है यह गौरां, क्या कतरनी जैसी जीह्वा है, आते ही उस बेचारी लड़की के पीछे पड़ गई है।

नीची नज़र किए बैठी भोलू का सिर घूम गया, उसे लग रहा था सास की जगह कोई राक्षसी बैठी है जो उसे अभी खा जाएगी। मां और बापू से बिछुड़ने का गम। छोटे बहन-भाइयों की याद, बचपन का घरौंदा सब उसके मन-मस्तिष्क पर छाए थे। अभी वह बिछौड़े की उस आग से ही बाहिर नहीं हुई थी कि ऊपर से गौरां के यह विष बुझे बाण बरसने शुरू हो गए। भोलू की सहमी-सहमी आंखों से टप-टप करते आंसू उसकी झोली में गिरने लगे। तीसरे दिन चारों दासियों को बिदा मिल गई। भोलू और भी बेसहारा हो गई। अब उसके लिए दिन-रात जो था वह थे सास और ननदों के छलनी कर देने वाले मर्म वचन। तीन दिन तक सुखदेव के उसे दर्शन नहीं हुए। दासियों के बिदा होने के बाद वह कमरे में अकेली बैठी रो रही थी, तभी सुखदेव उसके पास आया, वह रोती रही, नीचे निगाह किए बैठी रही सुखदेव थोड़ी देर उसे देखता रहा फिर ठोड्डी पर हाथ रख भोलू का मुंह उसने ऊपर उठाया, 'तुम रो रही हो, पगली क्या हुआ तुम्हें।''

''कुछ नहीं यूं ही''

सुखदेव ने जाकर किवाड़ बंद किया फिर भोलू के पास जाकर बैठ गया, ''चुप हो जा, मुझे रोना अच्छा नहीं लगता।'' भोलू ने आंखें पोंछ ली वह टुकुर-टुकुर आंखों से, जिनमें जलकण अभी भी झिलमिला रहे थे, सुखदेव को देखने लगी, सुखदेव ने अपने रूमाल से उसके आंसू पोंछे और उसे अपने बहुपाश में जकड़ लिया।

उधर दहेज में आई चीज़ों को घर के लोगों ने खोल-खोल कर देखना शुरू किया। ननदों को जो कुछ पसंद आया उठा ले गईं। कुर्सियों, सोफों पर बच्चें खूब कूदने लगे, खिलौने बच्चों के हाथों में उछलने लगे। जिस चीज़ की समझ नहीं आई उसे उल्ट-पल्ट किया जाने लगा। और भोलू बेखबर रही उसे हक ही क्या था बीच में बोलने का। जल्दी ही भोलू को घर के काम-काज में लगा दिया गया जो उसे आता नहीं था। बस मिल गया सूत्र उसे कोसने का। डरी, घबराई भोलू से कभी हाथ से बर्तन गिर जाता, कभी किसी चीज को ठोकर लग जाती, कभी चलते-चलते वह टकरा जाती, कभी आग न जलती, कभी सब्जी जल जाती, कभी फुलका न सिकता, बस बात-बात पर उसकी ठुकाई करने के लिए एक सास और नौ ननदें हाज़िर रहतीं।

भोलू क्या करे, बेचारी कराह उठी, मगर किसे सुनाए, क्या करे? दासियों ने जो व्यथा-कथा जाकर भोलू के बापू-अम्मां को सुनाई वह बिलख उठे। मगर बेटी को अब घर कैसे लाएं? बेटी के घर वे जा भी तो नहीं सकते थे आखिर उन्होंने नौनिहाल को भाजी देकर भोलू

के ससुराल भेजा। नौनिहाल भी तो कोई बहुत बड़ा नहीं था। बहन-भाई बहुत रो-रोकर गले मिले गौरां ऊपर से बड़ी मीठी बातें करके नौनिहाल को दिखाने लगी, मगर बातों-ही-बातों में उसे भोलू की शिकायतें भी सुनाती जाती। हम तो बहुत समझाते हैं इसे, मगर यह समझती ही नहीं, आखिर सब लड़कियों को मां-बाप का घर तो छोड़ना ही होता है। हां देखो तो बच्चा, बिल्कुल मूर्ख है घर का काम तो बिल्कुल सिखाया ही नहीं किसी ने। नौनिहाल क्या कहे बेचारा चुपचाप सुनता रहा। भोलू के पास कोई शब्द ही नहीं थे जो वह अपनी व्यथा उसे सुनाती, थे तो बस आसूं जो उसके रोकने से भी रुकते न थे।

पाँच-छः दिन रहकर नौनिहाल जाने लगा तो भोलू ने इतना ही कहा "भैया, अम्मां-बापू को कहना भोलू को बुला लो। नौनिहाल भो खूब रोया। आंखों-ही-आँखों में बहन की हालत को वह भली प्रकार जान चुका था। मगर घरवालों से किसी प्रकार की दया-याचना करने का मतलब था घोर आफत मोल लेना। नौनिहाल ने सारी बातें ज्यों-की-त्यों अम्मां को कह सुनाईं। बेटी के कष्ट से अम्मा का दिल भी दुखने लगा मगर जो दान कर चुके हैं, उसे वापिस कैसे लें। फिर भी साहस करके बापू को कहा कुछ दिन भोलू को यहां बुलवा लो। पत्र-व्यवहार हुआ सुखदेव छोड़ गया। 10-15 दिन ही रह पाई कि फिर लेने आ गया। रो-रो कर भोलू फिर उसी नरक में पहुंच गई। मानो यातना की चक्की में पिस जाने का उसने भी निश्चय कर लिया हो। घर का न खतम होने वाला काम, परिवार के सब लोगों की हुकूमत, चौबीसों घंटे की जली-कटी बातों की बौछार, भोलू सब सहने लगी क्योंकि उसे सुखदेव के साथ ही रहना है।

सुखदेव को अपनी पत्नी से बड़ा प्यार था, वह उसका भोला और प्यारा चेहरा देखकर मुग्ध हो जाता था। मगर उसमें यह हिम्मत नहीं थी कि वह अपनी मां और बहनों के व्यवहार से उसे बचा सके। जब कभी भी उसने कवच बनने की कोशिश की उल्टे उसी को सुननी पड़ी। करता भी क्या? इसी बीच भोलू मां बनने वाली हो गई, एक और मुसीबत, विवाह के एक वर्ष बाद ही उसने सोनू को जन्म दिया। सोनू का प्यारा- सा चेहरा देखते ही भोलू खुशी से भर गई। मगर गौरां पौते के जन्म पर भी प्रसन्न नहीं हुई, उसे तो उल्टा यह ईर्ष्या हुई कि अब सब इसकी कदर करने लगेंगे तो उसके शासन में ढील आ जाएगी। अतः अंदर-ही-अंदर मन में निश्चय कर लिया कि इसे ऊपर नहीं होने दूंगी। उधर सोनू अभी एक वर्ष का ही था कि भोलू फिर नयी तैयारी में। इस तरह हर दो वर्ष में भोलू के यहां नये बच्चे आते गए और प्रभु कृपा से सब पुत्र ही हुए। गौरां की ईर्ष्या का ओर-छोर नहीं। अब बच्चों को ले लेकर गौरां ने कोसना शुरू किया।

सुखदेव मिल्ट्री में कार्यरत था परंतु दूर जगहों पर पोस्टिंग होने से भोलू को नहीं ले जा सकता था। उधर मां को कहने की हिम्मत भी नहीं होती थी। अतः छुट्टी लेकर स्वयं ही घर आकर पत्नी और बच्चों से मिल जाता। परंतु बहुत दिनों तक अकेले रहने के कारण उसका ध्यान दूसरी तरफ बंट गया। बुरे साथियों की सोहब्बत में उसने पीना सीखा और धीरे-धीरे इतनी पीने लगा कि शराब ही उसकी संगिनी बन गई। पूरी-पूरी बोतल नीट पी जाता और नशे में धुत्त पड़ा रहता। जब उसकी पोस्टिंग काश्मीर में हुई तब तक वह मेजर बन चुका था और पांच बच्चों का पिता भी। भोलू तो वैसे भी पूरे परिवार के साथ 6 महीने श्रीनगर 6 महीने जम्मू रहती थी, सुखदेव की पोस्टिंग होने से सर्दियों में भी वह वहीं रुक गई। भोलू ने एक नई जिंदगी शुरू की परंतु उसका शरीर अब तक बहुत खोखला हो चुका था। उसे अक्सर जोड़ों में दर्द होता था। जीने की इच्छा उसके भीतर से मर चुकी थी। अतः न किसी ने घर में उसके इलाज की परवाह की, न

ही उसने स्वयं। अलबत्ता यदि किसी ने कहा चावल मत खाया करो। चावल खाने से रोग बढ़ जाएगा तो उसने चावल ही खाने शुरू कर दिए। ताकि जल्दी-से-जल्दी जिन्दगी से छुटकारा मिल जाए। बच्चे उससे संभाले संभलते नहीं थे, घर का काम-काज भी पहले जैसी तेज़ी से नहीं कर पाती थी। बाकी छः ननदों में से भी चार की शादी हो चुकी थी। भोलू के दहेज में से अधिकांश ननदों को दहेज में दिया जा चुका था, अतः अब छोटी वाली दो ननदें और एक देवर था मगर गौरां वैसी-की-वैसी थी। न दया, न ममता न जाने किस मिट्टी की बनी थी। भोलू भी सुनते-सुनते पत्थर हो चुकी थी। क्या करती ऐसे में श्रीनगर अकेले रहना भोलू को अच्छा ही लगा। अब उसने देखा सोनू दस वर्ष का हो चुका था सब बात समझता था। बबलु, टीका, मनि, तीतू भी मां के ज़्यादा पास आ गए। इन बच्चों ने अपनी मां को कभी अम्मां कह कर नहीं बुलाया था। वह उसे भोलू ही बुलाते थे। अकेले होने पर भोलू ने बच्चों को अम्मां कहना सिखाया। थोड़ा लोगों से मिलना शुरू किया। आस-पास की औरतों से बातें की तो उसका मन-मस्तिष्क धीरे-धीरे सुधरने लगा। उसके मधुर स्वभाव से उसकी पड़ोसिनें बड़ी खुश हुईं। उसे दो महीने में ही ऐसे लगा जैसे घर में कुछ काली छायाएं थी जो टल गई हों। सुखदेव बहुत पीता था और पीकर भोलू पर जब अपना जनून जाहिर करता तो वह कई बार मना कर देती। बस फिर क्या था नशे में धुत्त सुखदेव के उसकी पिटाई शुरू की। वह तो बेचारी हक्की-बक्की सी रह गई। सुखदेव को पीटने और भोलू के रोने की आवाज़ पड़ोस में भी पहुंच जाती। रो-रो कर भोलू सुखदेव को कहती यदि समझ से काम न लिया तो और बच्चे आ जाएंगें, जिन्हें पैदा करने की अब उसमें शक्ति नहीं है। शरीर से कुछ सहन करते नहीं बनता। दर्द से उसका अंग-अंग व्याकुल रहता मगर वहां कौन सुनता। सुखदेव तो वहां था नहीं, थी तो बस शराब ही थी। सो वह उसे तोड़ता रहा वह टूटती रही। पड़ोसिनों से पूछ-पूछकर गर्भ निरोधक गोलियां खाती रहती। उधर सुखदेव जो अब तक कुछ घूम फिर भी चुका था लोगों की पत्नियों को देख हीन भावना से ग्रस्त होता गया कि एक फूहड़ उसे ही मिली है। यह विचार उसे कभी नहीं आया कि भोलू को फूहड़ बनाने वाला कौन है। न उसे बच्चों का ख़्याल न भोलू का जो भी वेतन लाता सब शराब में फूंक देता, होटलों में बैठा रहता। भोलू जीवन से निराश होती गई। आखिर एक दिन जब सुखदेव घर आया तो पत्नी को तवे की तरह तपते चारपाई पर बेहोश पाया। मिसेज कपूर पास बैठी थी जो सुखदेव के आते ही उसने भोलू की तबियत के बारे बताया और अपने घर चली गई। सुखदेव डाक्टर बुला लाया उपचार शुरू हुआ। भोलू दो महीने के बाद जब बीमारी से उठी तो वह बहुत कमजोर हो चुकी थी। सोनू अम्मां का बहुत ख्याल रखता। अम्मां को समय पर दवाई लेने को मजबूर करता, अर्दली से कह-कह कर अम्मां को बार-बार खाने को देता पर था तो बेचारा बच्चा ही। इसी तरह छः महीने बीत गए, भोलू के भाग्य में सुख नहीं था। अप्रैल का महीना आ गया और जम्मू से घर के सब लोग श्रीनगर आ गए। अभी उसे अच्छी तरह होश भी नहीं आई कि फिर से पहाड़ टूट पड़ा। सोनू को मां से सहानुभूति थी वह मां के दर्द को समझने लगा था। वह दादी अम्मां से अम्मा का पक्ष लेकर लड़ने लगता। दादी का पारा और ऊपर चढ़ जाता। अगले छः महीने फिर उसी चें-चें में गुज़रे। शरीर से भी मजबूर भोलू दिमाग से भी कुंठित हो गई। सुखदेव को भी अब उसकी कोई परवाह न रही दिन-प्रतिदिन सुखदेव का स्वास्थ्य भी बोतल की भेंट चढ़ता चला गया। सुखदेव की तबियत कुछ दिनों से खराब ही चल रही थी कि घर के लोग जम्मू जाने को तैयार थे। भोलू ने कहा अम्मां रुक जाओ इनकी तबियत ठीक नहीं है। पर अम्मा फटकारती हुई बोली। तू किस मर्ज की दवा है, तू संभाल उसको, तेरा आदमी है। और अगली सुबह सब जम्मू चले गए। पड़ोस से मिसेज कपूर को बुला लाई भोलू "बहन, इन्हें कुछ होता

जा रहा है। क्या करूं? मिसेज कपूर ने मेजर कपूर को कह कर मिलट्री हास्पिटल से फोन करके डाक्टर दास को बुला भेजा। जांच करने पर डाक्टर ने बताया शराब ने इसे खोखला कर दिया है। फेफड़ों का एक्सरे लेना चाहिए। उसने दवाई कि चिट लिखी और उसे हास्पिटल ले जाने को कह कर चला गया। मिस्टर कपूर ही दवाइयां लाए। वह रात निकल गई अगली सुबह सुखदेव की तबियत एकदम बिगड़ गई, उसने जोर से आवाज़ लगाई। फट बोला, ''भोलू, मुझे पकड़ो मैं चला, भोलू जब तक उसे पकड़ती उसका सिर लुढ़क गया। भोलू स्तंभित-सी खड़ी रही। सोनू बोला अम्मां, बाबु जी को क्या हुआ। भोलू ने कहा, ''जाओ कपूर आंटी-अंकल को बुला लाओ।'' कोहराम मच गया। सुखदेव के हृदय की गति बंद हो चुकी थी।

जम्मू तार दी तो वहां से तार द्वारा ही उतर मिला ''लाश लेकर जम्मू आ जाओ। कैसे ले जाऊं अकेली औरत, न कभी घर से निकली, न खुलकर किसी से बात की। एक ननद थी शहर में वहां संदेशा भेजा। वह पीटती-पीटती आई खूब रोई, भाभी के गले लगी, आंसू बहाए, लेकिन जब उसे साथ चलने को कहा तो बोली बच्चों को छोड़कर कैसे जाऊं मैं दसवें पर आ जाऊंगी अभी नहीं आ सकती।

आखिर मेजर कपूर ने ही मिलट्री के ट्रक का इंतजाम किया उसमें लाश के साथ भोलू को, बच्चों को और दो चार सिपाहियों को बिठा कर विदा कर दिया। ट्रक ने अभी बनिहाल ही पार किया कि आगे सड़क टूट जाने से ट्रैफिक रुक गई, अब क्या हो? सड़क न जाने कब सुधरे। फिर वहां से ट्रंककाल करके सिपाहियों ने बक्खूसिंह को पता दिया कि लाश लेकर मिसेज ठाकुर बनिहाल में अटक गईं हैं क्या करें? दूसरे दिन नौनिहाल और बक्खूसिंह आए, गिरी हुई पस्सी से आगे पैदल चल कर बनिहाल पहुंचे और वहीं पर अंतिम-संस्कार कर दिया। सड़क ठीक होने पर सब जम्मू गए। हड्डियों का पंजर बनी भोलू घर की देहली पहुंची तो गौरां ''हाय नी डैने, खाई बैठीं ए मेरे लाल गी'' कहती हुई भोलू को पीटने लगी। बड़ी मुश्किल से छुड़ाया तब तक भोलू बेहोश हो चुकी थी। उठाकर अंदर ले गए। सारी बिरादरी इकट्ठी हुई थी। स्यापा शुरू होने ही वाला था कि एकदम सन्नाटा-सा छा गया। रीति-रिवाज होते रहे भोलू बेखबर। अम्मां-बापू आए, बेटी को देख-देखकर उनका कलेजा फटने लगा पर उसे कोई होश नहीं। सात दिन बाद भोलू ने आंख खोली, और थथलाती हुई मीठी आवाज़ से बोली, कोई मेरी सास को समझाओ, मेरा कोई कसूर नहीं है, मैंने नहीं मारा उन्हें, सुनने वाले बिलख उठे। सोनू, बबलू, टीका, मनि, तीतू सब मां की चारपाई के आसपास असहाय से खड़े थे। भोलू ने आंखें घुमाकर बच्चों को देखा छोटे-छोटे आंसू आंखों के कोनों में अटक गए, उसने अपना हाथ बच्चों की तरफ बढ़ाया वह सहमें-सहमें पास आते गए सोनू मां के पास पहुंच कर बोला, ''अम्मा तुम्हें क्या हो गया, हमें देखो।''

हां... अ.... वे.... टा.... तुम्....हारी.... अम्मां,..... अभी.... भी...म....र....ना नहीं..... चा...हती....अपने प्यारे... बच्चों.... को....बेसहारा छोड़ना.... नहीं .....चाहती। मैं....ए.... जी...ऊंगी...तुम्हें...यतीम नहीं होने.... दूंगी। आओ मेरे... बच्चे... मुझे सहारा दो।

सोनू का आंसुओं-भरा मुंह मां के मुंह से सट गया। भोलू के चेहरे पर इन घोर निराशा के क्षणों में भी एक दीप्ति आ गई। एक दृढ़ निश्चय जाग उठा और एक बार फिर वह काल के पाश से मुक्त होने को आकुल हो उठी। उसने अपने-आप को फिर जीवन के रास्ते पर मोड लिया लौ जलती रही गौरां देखती ही रह गई। ०

फूलवाली

❑ आनन्द 'लहर'

वह आज भी गली-गली घूमता है और हर रोज़ सुबह इसी चौक में खड़ा होकर यह प्रश्न करता है कि रात की रानी के फूलों पर कब तक सांप आते रहेंगे, कब तक यह क्रम चलता रहेगा? पर इस प्रश्न का उत्तर देने वाला यहाँ कोई नहीं आता। उसे लगता है कि उसके प्रश्न भी फूल की पत्तियों की तरह ही हैं।

आज भी फूलों की टोकरियाँ अपने आगे रखे, रंग-बिरंगे वस्त्र पहने लड़कियाँ फूल बेचती हैं। घटे के फूल, गुलाब के फूल, मोतिये के फूल, पीले फूल, नीले फूल, गुलाबी फूल, रंग-बिरंगे फूल, गुलदस्तों में सजे हुए फूल, हारों में चुने हुए फूल इस चौक में बिकते हैं। जिसके बीच में शिव मन्दिर है।

सुबह-सवेरे इन फूलों की टोकरियाँ सजाकर लड़कियाँ आवाज़ देतीं हैं। ''फूल ले लो फूल, भगवान आप की हर इच्छा पूरी करेंगे।''

लड़कियाँ जब आवाज़ देतीं हैं तो लगता है कलियाँ स्वयं फूल बेच रहीं हैं और उनके मुख से निकलने वाले शब्द जैसे फूल अपनी पत्तियाँ बिखेर रहे हों।

लगता तो यह भी है कि यह फूल बेचने वालियाँ मात्र फूल ही नहीं बल्कि अपने यौवन के कुछ सुन्दर क्षण भी बेच रही हों और खरीदने वाले आयु के बदले अपनी इच्छाएं खरीद रहे हों।

शिव मन्दिर के अन्दर जब घन्टियाँ बजती हैं, तो लगता है कि शब्दों एवं फूलों की कहानियाँ बिखेर रही हों। इस संसार के भीतर शब्दों की कहानियाँ उनकी पत्तियाँ लिख रही हैं।

एक दिन शब्दों और फूलों ने मिलकर एक कहानी बनाई। गुलाब नाम का एक लड़का, कंवल नाम की लड़की से फूल खरीदने लगा और ऐसा लगा कि फूल, फूलों से फूल खरीद रहे हों।

''कितने फूल चाहिये''- कंवल ने पूछा।

''थोड़े से'' गुलाब ने उत्तर दिया बात यही खत्म हो सकती थी पर गुलाब ने क्रम जारी रखते हुए फिर पूछा।

''रोज़ आती हो ?''

''हर सुबह''।

लगा कि फूल, फूलों की तरह बात कर रहे हैं और हर शब्द पंक्ति का विरोध करके अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहता है।

क्रम चलने लगा। गुलाब जब सातवें दिन आया तो दोनों के हाथों की उंगलियाँ टकरा गईं। लगा कि एक फूल की पत्तियाँ दूसरे की पत्तियों को छू रही हैं। फिर आँखों का मिलन हुआ। लगा कि फूल डाली पर नहीं बल्कि हवा में खिलना चाहते हैं।

गुलाब कंवल को अपनी सुगंध देना चाहता है, क्योंकि कंवल सुन्दर है, पर इसके पास सुगंध नहीं है। लगा कि फूल खरीदते समय गुलाब, कंवल को अपने मन का फूल दे बैठा हो। बात आगे बढ़ गई। होते-होते प्रेम हो गया। प्रेम कितना छोटा-सा शब्द है पर उसका भार दर्शनों से भी ऊँचा है।

गुलाब हर सुबह वहाँ आ जाता और कंवल से फूल खरीद कर मन्दिर के अन्दर चढ़ाता। एक दिन गुलाब ने आश्चर्य से कहा-

''कंवल मुझे तुझसे प्यार हो गया है।'' कंवल चुप रही।

गुलाब की समझ में यह नहीं आ रहा था कि उसके बाद क्या कहे और प्रेम के बाद क्या होता है।

गुलाब कॉलेज में पढ़ता था, सुन्दर था। उसका यौवन फूलों की तरह खिला हुआ और आयु के वृक्ष पर पंद्रह-सोलह वर्ष की इच्छाओं की शाखाएं, आशाओं की सुगंध को फैला रही थीं।

गुलाब का यहाँ आना नियम बन गया था। कॉलेज की किताबों से शब्दों की सुगंध उड़ गई थी। हर किताब के भीतर चिनाव बह रहा था और कच्चे घड़ों की कहानियाँ लिखी हुई थीं।

उधर नर्गिस नाम की फूल बेचने वाली लड़की गुलाब को देखती थी। कई बार तो वह सुबह कंवल से पहले ही वहाँ बैठ जाती पर गुलाब को तो बस कंवल की ही प्रतीक्षा रहती। नर्गिस ने कई बार गुलाब से कहा-, ''यह लो घटे के फूल भगवान के आगे चढ़ा दो। इससे तुम्हारे मन की सब इच्छाएं पूरी हो जायेंगी। यहाँ तक कि कंवल को पाने की इच्छा भी।''

पर गुलाब ने कभी भी नर्गिस की ओर ध्यान नहीं दिया। उसे हर समय कंवल की प्रतीक्षा रहती थी। एक दिन नर्गिस ने गुलाब से कहा- ''इतना ज़रूर याद रखना कि रात की रानी पर सांप अवश्य आता है।'' गुलाब इस बात को समझ तो गया पर वह समझना नहीं चाहता था।

फूल बेचने वाली लड़कियाँ कठोर सिंह नामक एक व्यक्ति के यहाँ से फूल लाया करती थीं। यह फूल, फूल जैसी लड़कियों के अपने न थे बल्कि एक खुरदरे और बदसूरत व्यक्ति की वाटिका में लगते थे। कठोर सिंह नरम फूलों का व्यापारी था।

कंवल कुछ अधिक ही नाजुक थी और कठोर सिंह कुछ अधिक ही कठोर था। कोई भी चीज़ हद से अधिक अच्छी नहीं होनी चाहिये। एक दिन कठोर सिंह ने कंवल के भीतर गुलाब की सुगंध का अनुभव किया। उसने यह भी देखा कि गुलाब नर्गिस की तरह पीला हो रहा था और कंवल के चेहरे पर गुलाब की तरह निखार आ रहा था। गुलाब अब कॉलेज न जाता बस अपनी कापियों पर कंवल का फूल बनाता रहता।

एक दिन कंवल ने भी अनुभव कर लिया कि उसके चेहरे पर गुलाब का निखार आ रहा है। कंवल और सुन्दर हो गई और कठोर सिंह और कठोर हो गया।

उस दिन कठोर सिंह ने कंवल को फूल बेचने के लिए दिये पर इनका मूल्य न लिया। उधर गुलाब ने कंवल से फूल खरीदने के लिये अपनी किताबें बेच डालीं, खेल का सामान बेच डाला और चोरी कर के माँ के गहने तक बेच डाले। गुलाब बिल्कुल पीला हो गया नर्गिस से भी अधिक। एक दिन अस्पताल जाकर अपना खून तक बेच आया। गुलाब को लगा कि कठोर सिंह आया है और अपने तेज़-नुकीले नाखुनों से गुलाब के फूलों की पत्तियाँ नोच-नोच कर बिखेर रहा है।

कठोर सिंह कंवल को अपनी सुन्दर कार में बिठा कर ले गया और उसे सम्बन्धों की कड़ी से बांध दिया। कंवल अब भी कभी-कभी अपनी सहेलियों से मिलने यहाँ कार में बैठ कर आती है और कठोर सिंह की तीसरी पत्नी के रूप में पहचानी जाती है।

गुलाब अब फूल नहीं खरीदता। पर चौक में बैठकर कंवल की प्रतीक्षा अवश्य करता है और नर्गिस भी हर सुबह गुलाब से कहती है- ''मैंने कहा था न कि रात की रानी की सुगंध पर साँप अवश्य आता है।''

ooo

गुरु दक्षिणा

❑ जसवीर त्यागी*

वयोवृद्ध गुरुदेव ने
नवागंना शिष्या से
गुरु दक्षिणा माँगी
सुनकर शिष्या चौंकी
स्पष्ट नकार दिया
गुरुदेव इतिहास ज्ञाता थे
द्रोण एकलव्य का उदाहरण
शिष्या समक्ष पसार दिया
बेचारी
इतिहास भंग न कर पायी
प्राचीन परम्पराओं के प्रति
अनास्था न दिखा पायी!

ooo

---

* WZ-12 A गांव बुढ़ेला विकासपुरी नयी दिल्ली-110018

वैराग्य पथ

❑ स्वराज्य शुचि

अमरकांत जमशेदपुर में टाटा कंपनी में डायरेक्टर हैं। वे इंजीनियर हैं। वे अपने काम में इतने निपुण हैं कि समय से पहले ही उन्हें प्रमोशन मिल जाता है। कोठी, बंगले के साथ-साथ में हाई सैलरी पर टाटा कंपनी में डायरेक्टर बनाये गये।

इन दिनों अमरकांत जी फैक्ट्री में अधिक काम होने के कारण बहुत थके-थके लगते हैं। थकान के कारण उनमें चिड़चिड़ापन भी आ गया है। छोटी-छोटी बात पर मानवी को डांट दिया करते हैं। एक दिन मानवी ने उनसे कहा कि लगता है कि आपको आजकल काम बहुत करना पड़ रहा है। इस कारण आप कभी सीधे ढंग से बात नहीं करते, क्या होता जा रहा है आपको। तब अमरकांत जैसे सोते से जाग उठे हों, बोले मानवी तुम कहती तो ठीक हो, सचमुच मेरे ऊपर काम का इतना बोझ है और आफिस की इतनी जिम्मेदारियां और परेशानियां मेरे सिर पर हैं, इस कारण कभी-कभी मैं अपना संतुलन खो बैठता हूँ। पर मानवी तुम मेरी बातों को सीरियस मत लिया करो। सच मानवी तुम्हें मैं अपना मन खोलकर तो दिखा नहीं सकता कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ। शायद दुनिया के और पतियों से अधिक। टाई खोल उसने अलमारी में टांगते हुए मानवी को अपने आलिंगन में बांध लिया, फिर बोला-''हां मानवी कंपनी के कई अधिकारी 15-15 दिन की छुट्टी पर चले गये। एक मैं ही ऐसा हूँ जो छुट्टी नहीं ले सकता। सारी जिम्मेदारी तो मेरे ऊपर हो है। ये अच्छा है कि तुम घर का मोर्चा संभाले रहती हो इससे मैं थोड़ा हल्कापन महसूस करता हूँ।''

मानवी ने पति को प्यार से देखा और संतोष की सांस ली कि चलो इन्हें ये एहसास तो है कि मैं घर ठीक से चला रही हूँ। इतने में ही बेटी प्रज्ञा कालेज से लौट आयी, दहलीज पर कदम रखा ही था, कि अपने पापा की आवाज़ और खुश्बू का एहसास उसे दूर से ही हो गया। प्यार से, अच्छा पापा आज तो आप मुझसे पहले ही आ गये आफिस से, रोज तो कितनी देर-देर से आते थे। अमरकांत और मानवी दोनों कमरे से बाहर बरामदे में निकल आये। प्रज्ञा को अपने गले से लगाते हुए कहा- ''बेटा तुम लोगों की कंपनी में अधिक से-अधिक रहना ही चाहता हूँ, पर क्या करूं, नौकरी तो बनिये की दुकान हो गयी। अच्छा चलो तुम भी फ्रैश हो लो, फिर सब लोग बैठकर साथ-साथ चाय पियेंगे। मान भी आता ही होगा। और हां मानवी तुम धरमू काका से कहकर पोदीने के पत्तों की पकौड़ियां बनवाओ, खुश्बूदार।''

प्रज्ञा बोली-''पापा, आज मैं आपके लिए कोई बढ़िया चीज बनाती हूँ जो 20-25 मिनट में ही तैयार हो जाती है।'' प्रज्ञा हाथ-मुंह धो, कपड़े बदल, धरमू काका के पास किचिन में चली गयी। देखते-देखते शाम के साढ़े छह बज गये। अक्टूबर का महीना था, सूर्य देवता विश्राम को चले गये थे। चारों तरफ धुंधलापन फैल रहा था। बिजली जला कर और लॉन में कुर्सी मेज डलवाई। उसी समय दीप्तिमान की मोटर-साइकिल की आवाज सुनाई दी। गेट के अंदर जैसे ही उसने प्रवेश किया तो हाथ हिलाकर कहा-''हाय पापा आज मुझे देर हो गयी। आप जल्दी आ गये और मैं लेटलतीफ बन गया।'' अमरकांत ने कहा-''आओ बेटा आज हम चारों प्यार से बैठकर चाय पियेंगे और पकौड़े खायेंगे। हां तेरी

* *ऐरन-297/5 साल्वेशन, रोड सिविल लाइंस रोड, बरेली (उ.प्र.)*

बहन हम लोगों को सरप्राइज़ देने के लिए धरमू काका के साथ कोई नई चीज बना रही हैं।'' थोड़ी देर में मान भी हाथ-मुंह धो वहां आ गया। सबने साथ-साथ बैठकर चाय पी। चाय पीते-पीते अमरकांत ने मानवी और बच्चों से कहा कि दस तारीख को संभवत: उसे एक कांफ्रेंस अटेन्ड करने नाइजीरिया जाना होगा, कंपनी की ओर से। मन तो इन दिनों घर से बाहर जाने का कतई नहीं है किंतु जाना तो पड़ेगा ही। डायरेक्टर जो ठहरा। प्रज्ञा बोली- ''पापा क्या हम लोग नहीं जा सकते।'' अमरकांत ने कहा ''बेटी एक तो तुम्हारा कालेज खुला हैं। दूसरा परिवार को साथ ले जाने की परमीशन नहीं मिलेगी।-''

इधर प्रज्ञा का एम.एस.सी. फाइनल हो गया और दीप्तिमान ने एम.बी.ए. कर लिया था। बेटा और बेटी दोनों के रिश्ते आ रहे थे। कंपनी में जब भी डाक पहुंचती उसमें ढेर सारे पत्र और लड़के-लड़कियों के फोटो होते। किंतु अमरकांत को इतना समय कहां था कि अपनी बेटी के लिये वर का चुनाव कर सके और बेटे के लिये बहू का। एक दिन उसने सोने से पहले मानवी से बातों-बातों में कहा-''मानवी ये कहते अच्छा तो नहीं लगता कि प्रज्ञा और मान की शादी के सिलसिले की पहल भी तुम्हीं करो। मैं ये सोच-सोच कर परेशान होता हूँ कि कब मैं अपने घर के प्रति उत्तरदायित्व निभाऊं। रानी ये काम भी तुम्हीं करती चलो तो अच्छा है। पढ़ी-लिखी बीबी के ये ही फायदे हैं कि पति घर की सभी समस्याओं से मुक्त रहता है।''

मानवी मुस्कुराकर बोली-''आप चिंता क्यों करते हैं, ये सब मैं कर लूंगी। और साथ-ही-साथ शादी की सफलता का श्रेय आपको ही मिलेगा। निश्चिंत रहिये। भारतीय पत्नी की यही तो विशेषता है।'' ये सब सुनकर अमरकांत को चैन मिला और साथ-ही-साथ उसे अपनी योग्य पत्नी पर गर्व भी हुआ। हफ्ते-भर के अंदर अमर अपनी विदेश यात्रा पर चले गये। जाते समय मानवी जब उन्हें सी-आफ करने पालम पर गयी तो उन्होंने कहा कि मानवी तुम अपने दामाद और बहू के फोटो का चयन कर लो और पत्र द्वारा बातचीत भी आगे बढ़ाओ। मान को दो-तीन महीने में कनाडा की किसी कंपनी में जॉब मिल जायेगा। मानवी ने कहा आप निश्चिंत होकर अपनी यात्रा पूरी करें। जब तक आप आयेंगे मैं बातचीत आगे बढ़ाकर बच्चों से उनकी राय जान, सारी बात कर लूंगी।

अमरकांत के जाने के बाद दूसरे दिन ही मानवी ने मान और प्रज्ञा से नाश्ते की टेबिल पर सुबह कहा कि बेटे तुम्हारे पापा कह गये हैं कि ये जो फोटो आये हैं इनमें से तुम सलैक्ट करके बताओ तो मैं उस परिवार के लोगों से बात करूं। प्रज्ञा ने कहा-''जी मां हम दोनों साथ-साथ बैठकर ही फोटो देखेंगे। सच मां बहुत मजा आयेगा। वैसे मां मेरी पसंद तुम्हारी पसंद होगी और तुम्हारी पसंद मेरी पंसद होगी।'' मान बोल उठा- ''मां मेरे लिये कोई तलाश करने की जरूरत नहीं है। मैं अपनी पसंद की लड़की आपको किसी दिन दिखा दूंगा। आपको अवश्य पसंद आयेगी। उसने भी एम. बी. ए. किया है। बड़ी अच्छी लड़की है।'' मानवी ने मान के सिर पर हाथ फिराते हुए कहा- ''बेटे तुमने तो हमारी समस्या ही हल कर दी। प्रज्ञा के लिये तो मैं पत्र-व्यवहार करूंगी। लेकिन तू मेरी होने वाली बहू से मुझे मिला।'' मान ब्रेकफास्ट करके खुशी-खुशी मुस्कुराता हुआ बंगले से बाहर गाड़ी की चाबी मांग, निकला और बोला-''आज तो मैं कार से जाऊंगा न।''

मानवी ने कहा-''हां बेटे।'' वह गाड़ी स्टार्ट करके चला गया। कालेज की छुट्टियां चल रही थीं। मानवी और प्रज्ञा दोनों फोटो लेकर बैठ गयीं, साथ बायोडाटा भी पढ़ती जा रही थीं। एक पत्र के साथ बायोडाटा और फोटो जिस पर मानवी का ध्यान पहले गया, वह देखने लगी, लड़का कम्प्यूटर इंजीनियर, उसके पिता महाराष्ट्र विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। मां डाक्टर थीं। उनका अपना निजी नर्सिंग होम था। एक मात्र अकेला बेटा। न कोई बहन, न कोई भाई। मानवी ने प्रज्ञा की तरफ फोटो बायोडाटा दोनों बढ़ा दिये। ''देख बेटी ये लड़का तो मुझे बहुत अच्छा

लग रहा है। अगर तू कहे तो आज ही मैं उसके घर वालों से फोन पर बात करती हूँ।''

मानवी ने कहा-''हां, मां बात करो। छोटी-छोटी बातें मुझ से क्या पूछती हो।'' उसी दिन मानवी ने टेलीफोन नं. देखकर महाराष्ट्र प्रोफेसर साहब को फोन मिलाया और उनसे बातचीच की। सब कुछ विस्तार से बताकर उनसे आग्रह किया कि यदि आप बाम्बे आ जायें तो हम लोग भी वहां पहुंच जायेंगे। मेरे भाई वहां डाक्टर हैं। ये बहुत अच्छा रहेगा। उन्होंने अपनी स्वीकृति देते हए कहा- ''अमरकांत जी आ जायें तो मुझे फोन पर बता दीजिए। मैं और मेरी पत्नी दोनों ही बेटे की शादी जल्दी-से-जल्दी करने के इच्छुक हैं।''

घर का सारा काम नियमित रूप से चल रहा था। मानवी को इन दिनों घर में भी बहुत काम देखना पड़ रहा था। क्योंकि घर के नौकर दस दिन की छुट्टी लेकर चले गये थे। धरमू काका बेचारे क्या-क्या काम करते। दीप्तिमान एक दिन सुबह-सुबह बोला- ''आज मैं अपनी फ्रैंड नलिनी से मिलाऊंगा। घर पर उसको ले आऊं या किसी रेस्टोरेंट में। मानवी, ''बेटे घर पर ही शाम को ले आओ, ये ही ठीक रहेगा।''.

दीप्तिमान- ''जी अच्छा।''

मानवी ने फिर पूछा, आज शाम को ही लाना है या कल। आज ही मां। दीप्तिमान बोला-''मां कल करे सो आज कर, आज करे सो अब, मैं तो इस बात को मानने वाला हूँ ।''

मानवी ने ममता-भरी दृष्टि बेटे पर डाली और न जाने किस सोच के समुन्द्र में गोते लगाने लगी। वह सोच रही थी कि यह आयु भी कैसी अल्हड़पन की होती है, जिसमें युवा और युवक अपने ही बारे में सोचते हैं। उन्हें घर की समस्याओं से कोई सरोकार नहीं होता। लंच के बाद प्रज्ञा और मानवी आने वाली मेहमान के लिए कुछ खाने-पीने का चीजें बनाने में लग गईं।

मानवी हर प्रकार से अपने बेटे को खुश रखने की पूरी-पूरी चेष्टा करती, ताकि किसी प्रकार का कोई तनाव न हो। क्योंकि वह विवेकशील नारी है। वह जानती है कि मध्यम- वर्गीय परिवार में छोटी-छोटी बातों को लेकर तनाव और झगड़े बने रहते हैं। बेटे-बेटियों और मां-बाप के बीच।

काम से निपट कर दोनों मां-बेटी, बैडरूम में आराम करने चली गईं। इसी बीच फोन की घंटी बची। फोन दीप्तिमान का था। उसने फोन पर कहा कि मैं शाम को चाय पर नलिनी के साथ नहीं आ सकूंगा। रात को डिनर पर ही आऊंगा। मैं नलिनी के साथ बर्थडे पार्टी में जा रहा हूँ। घर नौ बजे से पहले नहीं पहुंचूंगा। आप हम दोनों के लिए डिनर तैयार करा लेना। हां मां कोई स्पेशल आइटम की आवश्यकता नहीं है। हम लोगों की तरह ही है और पूरी तरह से शाकाहारी है। मुझ से भी कह रही है कि शादी के बाद मैं आपको भी शाकाहारी बना दूंगी। सचमुच मां इसके बड़े अच्छे विचार हैं। जब तुम इससे मिलोगी तो स्वयं जान लोगी। लो माँ इससे बात करो। मानवी ने फोन का रिसीवर लिया तभी उधर से आवाज़ आई, हैलो आण्टी मैं नलिनी बोल रही हूँ। नमस्कार, आप कैसी हैं।

मानवी ने कहा, ठीक हूँ बेटी, और अब तुम घर तो आ ही रही हो कुछ घंटों के बाद।

रात को डिनर के समय प्रज्ञा, मानवी, नलिनी और दीप्तिमान चारों ही थे। प्रज्ञा को नलिनी से बातें करना बहुत अच्छा लग रहा था। नलिनी देखने में सौम्य, काले घुंघराले बाल, कटीली आंखें, सुंदर नाक, गुलाबी होंठ और आकर्षित चेहरे वाली लड़की है। मानवी अपने मन में सोच रही थी कि बेटे की पसंद तो अच्छी ही निकली यदि इसका परिवार भी हर तरह से अच्छा हो तो ये सचमुच इस घर की बहू बनाने लायक है। डिनर ने बाद जी-भर कर गप-शप हुई। ड्राइंगरूप में बैठकर चारों ने काफी पी। गुलाबी इस मौसम में काफी का मजा तो कुछ निराला ही होता है। काफी की चुसकियों के साथ वे लोग

फिल्मी गानों का कैसेट लगाकर मजा ले रहे थे। केवल अमरकांत ही नहीं थे। उनका न होना मानवी को खल रहा था। वह हर काम में पति को पूरक मानकर ही चलती। कुछ समय बाद दीप्तिमान नलिनी को छोड़ने जाने लगा। जाते समय नलिनी ने मानवी के पैर छुए और प्रज्ञा को लिपट कर प्यार किया। नलिनी उस घर में आज ऐसी लग रही थी जैसे न जाने कब से वह इस परिवार से परिचित हो। उसके इस स्वभाव की विशेषता का मानवी ने मूल्यांकन किया। वे लोग चले गये तो मां-बेटी सब रख उठाकर नाइट ड्रेस बदल कर अपने बैडरूम में आ गयीं। लेटते-लेटते प्रज्ञा ने कहा-''मां मुझे तो नलिनी लड़की अच्छी लगी।''

मानवी-''बेटी माना लड़की तो अच्छी है किंतु इतने से ही तो काम नहीं चल पायेगा, उसका परिवार उसके माता-पिता, भाई-बहन सभी कुछ तो देखना पड़ेगा। अच्छा छोड़ो तू भी कुछ पढ़, मेरी ये नावेल अधूरी है। तेरे पापा के आने से पहले-पहले इसे पढ़ना है।'' दोनों को पढ़ते-पढ़ते नींद ने घेर लिया। दूसरे दिन सुबह की फ्लाइट से अमरकांत नाइजीरिया से आ गये। अमरकांत जब घर आये तो उन्होंने गैलरी में रखे हुये रैक पर किसी लड़की का फोटो देखा। आश्चर्य से, मानवी और प्रज्ञा से पूछा, ''अरे भई ये किस लड़की का फोटो है।'' प्रज्ञा ने मां के इशारे पर कह दिया कि मेरी फ्रैंड का है। मैं उसके घर गयी थी, उसने मुझे दिया था। अमरकांत जी मुस्कराकर अपने कमरे की ओर बढ़ गये। मानवी ने आंखों में उनका चेहरा भर कहा- कि इतनी लंबी यात्रा करके भी तुम कितने अच्छे लग रहे हो। आफिस की चिंताओं से आप बाहर जाकर मुक्त हो जाते हो। ये ही कारण तो है कि हफ्ते-दस दिन में तुम्हारी शक्ल अच्छी हो जाती है। आरामकुर्सी पर बैठते-बैठते अमरकांत ने कहा कि कहीं तुम नजर न लगा देना मुझे।

मानवी-''मैं नजर क्यों लगाऊंगी, नजर लगाने वाले तो आफिस में तुम्हें बहुत मिलेंगे।''

अमरकांत-''अच्छा छोड़ों यार, सूटकेस खोलकर देखो मैं तुम लोगों के लिए क्या-क्या लाया हूँ। मानवी के लिये साड़ी, प्रज्ञा के लिए कार्डीगन, दीप्तिमान के लिए एक सुंदर-सा कैमरा और छोटी-मोटी चीजें आफिस के लोगों के लिये।''

नहा धो, तैयार होकर अमरकांत अपने आफिस चले गये, वहाँ बोर्ड ऑफ डायरेक्टर की मीटिंग रखी गयी थी। आफिस में सभी ने पूछा, ''सर आपका ये टूर कैसा रहा।'' वे बोले-''बहुत अच्छा, बैरी गुड। मौसम भी अच्छा था।'' दिन-भर काम में उनका समय बीत गया। शाम को साढ़े छह बजे जब वे घर पहुंचे तो मानवी उनका इंतज़ार कर रही थी। मानवी ने कुछ रूठते हुए कहा कि आज तो तुम्हें जल्दी आना चाहिए था।

अमरकांत-''क्यों आज मैं सुंदर लग रहा हूँ इसलिए।''

मानवी-''बेकार की बातें मतं करो, चाय तुम्हारा वेट कर रही है।'' प्रज्ञा और मान दोनों अपने-अपने दोस्तों के यहां गये हुए थे। चाय पीते-पीते मानवी ने अपने पति से कहा कि आपको दो खुशखबरी सुनाती हूँ। हां-सुनाओ। पहली तो ये कि आप अपने बेटे के लिए लड़की तलाश न करें, उसने स्वयं कर ली और नलिनी के विषय में पूरा विस्तार से उन्हें सुना दिया।

सूरत यूनिवर्सिटी में एक प्रोफैसर और उनकी वाइफ डाक्टर है। बेटा उनका कम्प्यूटर इंजीनियर है। परसों प्रोफैसर साहब से तो फोन पर मैंने बातचीत की। बातचीत से तो वे लोग बहुत अच्छे लगे। उन्होंने कहा कि बाम्बे हम लोग मिल लेते हैं, ठीक रहेगा न। योगेश भइया भी तो बाम्बे में ही है।

अमरकांत बोले- ''एक-दो दिन में चलने का प्रोग्राम बना लेते हैं, उससे पहले हमारी बहू

नलिनी को तो बुलाओ मैं भी तो देखूं।''

मानवी ने कहा, ''कल ही बुलाती हूँ। मान को आ जाने दीजिए, वह ही उसे लेकर आयेगा। मुझे उम्मीद है कि आपको लड़की पसंद आ ही जायेगी। वे बोले मेरी पसंद से क्या, मुझे तो देखकर हां-ही तो करनी है। बेटे की हां-में-हां तो मैं मिलाऊंगा ही।''

अमर बोले- ''थोड़ा-सा रेस्ट करने के बाद तैयार होकर चलो कहीं घूम आते हैं। तुम तो इतने दिनों कैद में ही रहीं कहीं बाहर निकली ही नहीं होगी।''

मानवी-''चलिये इससे अच्छी बात क्या है।'' धरमू काका को आवाज़ दे, रात के डिनर का सब कुछ बता देने के पश्चात् मानवी भी तैयार होने चली गयी। इसी बीच प्रज्ञा लौट आई। अपनी फ्रैंड की बर्थडे पार्टी से। बोली मां- ''कहां जा रहे हो, आप लोग तैयार होकर।'' मानवी ने कहा, ''तुम घूम फिर कर आयी हो, अब हम दोनों जा रहे हैं।'' उस शाम वे लोग इधर-उधर घूम फिर कर रात करीब साढ़े-नौ बजे घर वापस आये। अमरकांत जी ने थोड़ी देर बैठकर बातचीत की। शादी के विषय में उसके विचार जान आगे की योजना बनाई। प्रज्ञा ने स्पष्ट रूप से कह दिया जहाँ मां बातचीत कर रही हैं सब कुछ अच्छा लगा, शेष आप दोनों लोग तय कर लीजिए। आप दोनों की हां में मेरी हां है।

दूसरे दिन नलिनी को देखने के पश्चात् संडे मोर्निंग फ्लाइट से मानवी, अमर और प्रज्ञा तीनों बाम्बे के लिए रवाना हो गये। मानवी के भाई डॉ. योगेश उन लोगों को लेने एयरपोर्ट पर आ गये। बहुत दिन बाद बहन, भाई, जीजा, साले, मामा-भानजी से एक मुलाकात हुई। सब एक-दूसरे से मिलकर खुश हो रहे थे। दो-तीन दिन रहकर उन लोगों ने प्रोफैसर देव, उनकी पत्नी डॉ. उर्मिला, बेटा अमन तीनों को अपने घर चाय पर बुलाया।

प्रज्ञा देखने में तो अच्छी थी ही, इस कारण अमन और उसके माता-पिता ने रिश्ते के लिए अपनी स्वीकृति दे दी। रस्म अदायगी वहां से चलते समय कर दी गयी।

प्रोफैसर साहब ने कोई मांग नहीं रखी, उनके जाने के बाद अमर ने मानवी से कहा कि डार्लिंग हम लोग कितने भाग्यशाली है, इतने अच्छे रिश्ते मिल रहे हैं। प्रज्ञा को अमन ने अमन को प्रज्ञा ने हृदय से स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन वे लोग जबलपुर अपने घर वापस आ गये। विधाता जब चाहता है तो कोई काम बिना किसी बाधा के पल-भर में ही हो जाता है। मानवी को ऐसा दृढ़ विश्वास था।

अमरकांत आफिस के काम के साथ-साथ बेटा और बेटी की शादी की तैयारी में जुट गये। मानवी को एक लाख का चैक देकर कहा कि बैंक से पैसे निकालकर तुम दोनों आवश्यक कपड़े और चीजों की खरीददारी करो। तुम तो ये जानती ही हो कि मैं तुम्हारे साथ शॉपिंग के लिये समय नहीं निकाल पाऊंगा। प्रज्ञा बोली पापा, ''मैं और मां काफी हैं। भइया का जब सामान खरीदा जायेगा तो उसे साथ में ले लेंगे। हां आप चिंता न करें।'' अमर बेटी के आत्म-विश्वास को देखकर मुस्कुरा दिया।

इधर दीप्तिमान के ससुराल वालों की सारी इन्कवारी करने के पश्चात् नलिनी से उसका रिश्ता भी तय हो गया। दो माह के अंदर दोनों की शादी करने का प्रोग्राम तय हो गया। पंडित जी शादी का मुहूर्त निकालने के लिये प्रातः नित्य ही आकर मानवी से सलाह मशवरा करते।

दिसंबर की दो तारीखों का मुहूर्त पंडित जी ने निकाल दिया। पहले बेटे की शादी तत्पश्चात हफ्ते-भर बाद बेटी की शादी का मुहूर्त निश्चत हो गया। खरीददारी और शादी की तैयारियों में अमरकांत के प्राइवेट सैक्रटरी तथा आफिस के और सहयोगी पूरी तरह से उसका

हाथ बंटा रहे थे। पहले दीप्तिमान की शादी के कार्ड छप कर आ गये। शादी उसी शहर में थी, इसलिए इन लोगों को अधिक कुछ दौड़-धूप नहीं करनी पड़ी। दोनों ओर के प्रतिष्ठित परिवार होने कारण समाज के उच्चवर्गीय और अधिकारियों में कार्ड बांट दिये गये और स्वयं जाकर भी मानवी और अमरकांत ने एटहोम के लिये बुलावा दिया। सबकी बधाइयां स्वीकार करते-करते दोनों पति-पत्नी आजकल बहुत खुश नजर आ रहे थे।

एक दिन गाड़ी में बैठे-बैठे मानवी ने अमर से कहा कि "शादी के काम के कारण तो मुझे आपका अधिक-से-अधिक साथ मिल रहा है। नहीं तो कहां तुम एक घंटा भी तो पूरे दिन में मेरे लिये नहीं निकाल पाते हो।" अमर बोला-"ये तो तुम सच कहती हो मानवी, आदमी का जीवन भी मशीनी हो गया है। पर छोड़ों यार, जितने घंटे सुख के हम दोनों एक -दूसरे के साथ गुजार लें ये सुखकर है। इंसान का जीवन भी चलती ट्रेन की तरह लगता है। कोई कहीं उतर जाता है तो कोई कहीं उतर जाता है। जीवन क्रम ही कुछ ऐसा है।"

मानवी बोली-"हां ये तो तुम ठीक कहते हो। जीवन की गाड़ी भी विधाता की बनाई हुई है। और क्रम भी, हम दोनों तो केवल यात्री हैं।"

अमरकांत बोले- "अरे मानवी तुमने तो कमाल कर दिया। तुम तो दार्शनिक जैसी बातें करने लगी।" सारे दिन वे लोगों से मिलने-जुलने और कुछ जेवर इत्यादि की खरीददारी कर शाम को अपने घर आ गये। बहू और बेटी दोनों के लिये अलग-अलग सोने तथा कुंदन तथा हीरे के कुछ छोटे-मोटे जेवर भी खरीदे।

बारात जाने के दो दिन पूर्व घर में मेहमानों का आना-जाना शुरू हो गया। अमरकांत ने अपने आसपास के एक-दो फ्लैट तथा कई गेस्ट-हाउस बुक करा लिये थे। मेहमानों के लिए गाड़ियों का भी प्रबंध करा लिया था। हर गेस्ट-हाउस में मेहमानों के खाने-पीने और चाय की व्यवस्था दो दिन पूर्व ही कर दी थी। शेष खाना सामूहिक ही था, घर पर।

आज उसके घर में गाना-बजाना, बाहर गेट के पास शहनाई, बजाने वालों को बिठाया गया था। शहनाई की सुरीली आवाज़ दूर-दूर तक पहुंच रही थी। जो सबके कानों को भी लग रही थी। घर मेहमानों से तथा अमरकांत के माता-पिता बहन-भाइयों से भरा हुआ था। जोरदार तैयारियों के साथ दीप्तिमान की बारात घर से चल दी। रास्ते में नाच गाना। जैसा कि अन्य बारातों में होता है, हो रहा था। सभी लोग झूम-झूम कर बैण्ड के साथ नृत्य कर रहे थे। रिश्तेदारों ने मानवी और अमन को अपने घेरे में खींच लिया। वे लोग न-न करते रहे पर उनकी एक न चली। सभी रीति-रिवाजों के साथ अमर और मानवी ने अपने बेटे का विवाह मंडप पर कार्य संपन्न किया। नलिनी बहू के रूप में घर आ गयी।

हफ्ते-भर बाद प्रज्ञा की शादी का मुहूर्त भी आ गया। कुछ मेहमान तो दूसरे दिन चले गये। कुछ लोगों को मानवी और अमर की प्रार्थना ने रोक लिया।

अब इस घर में प्रज्ञा और दीप्तिमान के इलावा नलिनी भी थी। जो पूरी तरह से मानवी का साथ दे रही थी। नई बहू होते हुए भी वे दोनों हनीमून के लिये बाहर न जा सके। मानवी ने नलिनी से कहा भी, कि बेटे तुम दोनों को मैं हनीमून के लिये भी नहीं भेज पाई। अब प्रज्ञा की शादी के बाद तुम दोनों हनीमून के लिये चले जाना। नलिनी बोली-"जी मां, तो क्या हुआ, शादी के बाद चले जायेंगे।"

उसने प्यार-भरी दृष्टि से नलिनी की ओर देखा और बहू की ये बात सुनकर उसे बड़ा संतोष हुआ। दूसरे दिन बारात आने वाली थी। बारात की सजावट तथा ठहरने का प्रबंध अमरकांत ने अपने सहयोगियों के द्वारा अच्छे-से-अच्छ करा लिया था। अमरकांत का व्यवहार अच्छा होने के कारण

उसकी कंपनी के सभी लोग बड़े प्यार से उनके काम करने में लग जाते। सभी लोग गेस्ट हाउस में जाकर बारात के ठहरने की व्यवस्था देख रहे थे। मानवी के डाक्टर भाई भी बांबे से आ गये थे। वे भी सबके साथ काम देख रहे थे कि किसी प्रकार की कमी न रह जाये। बारातियों को सभी सुविधायें तथा अधिक-से-अधिक आराम दिया जाये। ये ही सबकी हार्दिक इच्छा थी। घर में ढोलक की आवाज़ें भी आ रही थी। और बाहर फिर शहनाई की बमलहरी दूर-दूर तक लोगों के कानों में रस घोल रही थी।

मानवी तथा उसकी भाभी ने मिल कर प्रज्ञा की विदाई का सामान एक बड़े सूटकेस में रख दिया था। प्रज्ञा की मामी ने उसी दिन प्रातः दस बजे हल्दी, उबटन तथा मेंहदी का कार्य संपन्न करा दिया। घर में रौनक ही रौनक बिखरी हुई थी। शाम को जब प्रज्ञा नहा-धोकर हल्के गुलाबी सूट में अपने कमरे से बाहर निकली तो उसका रूप निखर कर अधिक लावण्यमान हो रहा था। उसकी स्हेलिया उसे देख-देख कर कह रही थीं आज प्रज्ञा कितनी सुंदर लग रही है। मामी ने झट उसकी नजर उतारी, ये कह कर कि तुम सब तो उसको नज़र लगा रही हो।

दूसरे दिन शाम बारात के आने से पहले गेट से लेकर रोड के काफी दूर तक दोनों तरफ सजावट का प्रबंध कर दिया गया था। सजावट में जितना अधिक-से-अधिक सुंदरीकरण हो सका, अमरकांत के आदमियों ने उसमें कोई कोर-कसर नहीं रखी थी। बेटी का विवाह भी बड़ी धूमधाम तथा अरमान के साथ अमरकांत और मानवी ने संपन्न किया। रात देर तक डिनर चलती रहा। इसके पश्चात् कुछ खास लोगों के साथ माता-पिता विवाह के मंडप पर । फेरों का मुहूर्त 11.35 बजे का था। लड़के वाले मुहूर्त के पाबंद थे। एक मिन्ट भी इधर-उधर करने को तैयार नहीं थे। विवाह मंडप पर दोनों परिवार के लोगों ने हंसी-मज़ाक के साथ भरपूर मनोरंजन किया। इसके पश्चात सब लोग चले गये। मानवी और प्रज्ञा घर के सभी लोग बहुत थके हुए थे। जाकर सो गये। प्रातः मानवी को छोड़ सभी की आंख देर से खुली। मानवी विदा की चिंता के कारण सो नहीं पाई। उसे प्रज्ञा के बिछुड़ जाने का भी दुःख साल रहा था। मां-बेटी का संबंध होता ही ऐसा है। इधर प्रज्ञा भी सोते-सोते सिसक उठती थी कि अब वह मां से अधिक दिन दूर रहा करेगी। पापा से दूर रहने की तो आदि हो चुकी थी। नहाने-धोने और नाश्ते के बाद सब लोग गेस्ट-हाऊस से घर पर आ गये। क्योंकि विदा का मुहूर्त भी 1.10 पर था।

अमरकांत बार-बार घर के अंदर आते, बार-बार घर के बाहर जाते। बेटी की विदाई तो करनी ही है। इससे उनका मन भी जाने क्यों दुःखी हो रहा था। क्योंकि छोटे-मोटे दुःख तो वे यह कहकर टाल दिया करते थे कि इस तरह दुःख मनाने से काम तो नहीं चलेगा। सुख-दुःख तो जीवन में आते ही रहते हैं। किंतु आज तो उन्हें भी लग रहा था, जैसे कि उनकी आत्मा उनसे अलग हो रही हो। पल-पल उनका मन अधीर हो उठता था। मानवी से आकर वे कहते जल्दी से प्रज्ञा को तैयार करो। वे सब लोग बाहर आ चुके हैं। २.२५ पर इनकी फ्लाइट बाम्बे के लिए जायेगी। मानवी रूंधे हुए गले से कहती अमर सब तैयार है। बेटी की विदा में ढील थोड़े ही करनी है। विदा का सामान बाहर निकलवा कर रखा जाने लगा। ये काम दीप्तिमान और उसके मामा कर रहे थे। मामी भी सामान पहुंचवाने में मदद कर रही थी। विदा की तैयारी भी लगभग पूरी हो चुकी थी। जब प्रज्ञा को लेकर नलिनी और उसकी मामी बाहर आई तो मंडप के पास खड़े हो विदा की रस्में पूरी की तथा पंडित जी के एक शिष्य ने विदाई गान पढ़ा। उस समय दोनों तरफ के लोगों की आंखों में आंसू-भर आये। प्रज्ञा मां और पापा से लिपट कर रो रही थी। आगे बढ़कर प्रोफैसर साहब ने कहा कि बेटा तू इतना क्यों रोती है। मेरे तो कोई बेटी नहीं थी, इसलिये मैं अमरकांत जी से बेटी मांगने आया था। अब तो तू दोनों परिवारों की बेटी है। उनके उदारवादी और सहज शब्दों को सुनकर सभी के चेहरों पर संतोष झलक आया। घर से बाहर निकल प्रज्ञा को भाई-भाभी ने गाड़ी में बिठाया, सब ने सबसे विदा ली। प्रज्ञा अपने पिता की दहलीज को सूना कर गाड़ी में बैठ, आंखों से ओझल हो गयी, सबको देखते-देखते। विदा के पश्चात् सारा घर खाली-खाली हो गया। आये

हुए अतिथिगण अपने-अपने घर लौट गये। रात देर तक मानवी और अमर दोनों बातें करते रहे। मानवी के चेहरे पर बेटी बिछोह की उदासी यथावत थी।

अमर ने अपने-आप को संभाल लिया था। मानवी का उदास चेहरा देख अमर ने कहा-''मानवी अब तो हद हो गयी। चलो हम लोग बाहर लॉन में बैठते हैं।'' वह मानवी का हाथ पकड़ बाहर लान में ले आये। दोनों बाहर बैठ गये। अमर ने मानवी को समझाते हुए कहा कि अब तुम बेटी के बारे में कुछ नहीं सोचोगी। हम कितने भाग्यशाली है कि इतना अच्छा परिवार और कितना सुंदर हंसमुख प्रज्ञा को पति मिला। वह भी अपने मां-बाप का इकलौता बेटा है। मानवी ने 'हूं' कहते हुए अमर की तरफ देखा और हल्के से मुस्कुरा दी। बोली-''अमर तुम ठीक ही कहते हो। मैं कुछ ज़्यादा ही भावुक हूं। अच्छा ठीक है। धरमू काका को बुलाकर चाय बनवाओ।'' ठंडी हवा के झोंके आ-आ कर दोनों को स्पर्श कर रहे थे। चाय पीते-पीते अमर ने कहा, ''अब मैं एक महीने तक इंडिया से बाहर नहीं जाऊंगा। मैंने अपने बॉस से कह दिया है। कभी-कभी मेरे हार्ट में हल्का-सा पेन उठता है। इन दिनों मैं सारे चैकअप करवा लूंगा। और देखो रात को अमन-प्रज्ञा का फोन भी आता होगा।''

हम लोग काहे को अपना जी हल्का करें। मानवी ये भी तो सोचो कि बेटा और बेटी दोनों कम-से-कम एक साल के लिए तो हम लोगों से जुदा हो ही जायेंगे। दीप्तिमान को तो टाटा कंपनी के एक यूनिट कैलोर्फोनिया में जॉब मिल गया है। ये दोनों भी चले जायेंगे। अमन जर्मनी में पहले से ही है। अब तो साइंस ने टेलीफोन और ई-मेल के कारण अपने प्रिय जनों की दूरियां कम कर दी हैं।

मैं तो ये भी सोच रहा था मानवी कि अब मैं जब इंडिया से बाहर जाऊंगा, तुम्हें अपने खर्चे से अधिकांश समय साथ रखूंगा। ये ही तो दिन साथ रहने के हैं। भविष्य की कौन जानता है। देखते-देखते एक माह गुज़र गया। दोनों कप्पल अपने-अपने हनीमून से लौट आये। मानवी घर के कामों में जुट गयी। अमर ने अपना चैकअप करा लिया। नसीम डाक्टर ने कहा कि आप बिल्कुल फिट है। आपको कोई बीमारी नहीं है।

दो दिन के लिये प्रज्ञा और अमन बाम्बे से आकर, मिलने के बाद चले गये। दस दिन बाद ही उन्हें जर्मनी जाना था। दीप्तिमान भी अपने जाने की तैयारी में जुट गया। वह अपने मन में सोच रहा था कि नलिनी को भी तो वहां जाब मिल जायेगा। दोनों खूब काम करेंगे।

बेटी के जाने की तैयारी में उन दिनों मानवी जुट गयी। जितना वह अपनी भावुकता को नियंत्रित करती, उतनी ही उसके मन की बेचैनी बढ़ती जाती। वह सोचती कि परिवार का क्या ये ही अर्थ है। कि बच्चों को जन्म दो, पालो, पढ़ाओ और शादी के बाद सब अपनी उन्नति के लिये, अपने रास्ते स्वयं बना लें। फिर अपने-आप से वह कहती कि सारे समाज में ऐसा ही हो रहा है। फिर मैं क्यों अधीर हो जाती हूँ। ये मेरी अज्ञानता है। जो मुझे मोह में बांध लेती है। अमर ठीक ही तो कहते हैं कि तुम्हारी भावुकता ही तुम्हें कष्ट पहुंचाती है। सचमुच मेरे अमर बहुत ज्ञानवान इंसान है। मैं कितनी भाग्यशाली हूं कि अमर जैसा पति मुझे मिला है। दीप्तिमान की और नलिनी की रोज पार्टियां हो रही थीं। वह बहुत खुश था कि उसे अमेरिका में बहुत अच्छा जॉब मिला है। उसने मानवी से कहा-''मां मैं तुम्हें साल में दो बार नहीं तो एक बार अवश्य अमेरिका बुलाऊंगा, टिकट भेज कर, तुम हम लोगों की चिंता करना छोड़ दो।'' वह मौन रही।

28 नवंबर को बेटे को जाना था। प्रज्ञा तो पहले ही जा चुकी थी। बेटे और बहू के जाने के पश्चात् रोज की दिनचर्या में कुछ परिवर्तन हो जाये ये सोचकर अमर ने मानवी को लेकर कहीं साउथ में जाकर मंदिरों में दर्शनार्थ के लिये जाने का प्रोग्राम बनाया। ये प्रोपोजल मानवी के सामने जब रखा तो वह कहने लगी धरमू काका के ऊपर छोड़ कर ही जाना होगा। अमर बोले-''डार्लिंग तुम क्यों चिंता

करती हो। ये सब काम तो मेरा है। तुम्हें कष्ट बिल्कुल नहीं होगा। वाई एअर तुम्हें ले चलेंगे। बच्चों के विवाह के पश्चात् हम लोग कुछ तीर्थ भ्रमण कर डालें तो क्या बुरा है। तुम हर काम में पीछे हटती हो। तुम्हारी ये सोच मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है।''

मानवी-''जैसा तुम कहोगे, वैसा ही करूंगी। एक-दो दिन में बच्चों के फोन तो आ ही जायेंगे।''

अमर-''मोबाइल फोन तो हम लोगों के पास रहेगा। जहां से चाहेंगे, बच्चों से बात कर लेंगे। तुम अपना मन दु:खी मत किया करो।'' दो-तीन दिन के बाद वे लोग भी तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़े। घूमने-घामने में मानवी अमर के साथ बहुत खुश रही और घर की सभी बातें, चिंताओं से मुक्त रही। साउथ में वहां के मंदिरों को देखा, हैदराबाद भी गये। केरल का प्राकृतिक सौंदर्य भी देखा। अच्छे-अच्छे होटलों में ठहरना, खाना-पीना और अमर का सान्निध्य मानवी को बहुत अच्छा लग रहा था।

वह ईश्वर से प्रार्थना रोज करती-''हे परमात्मा मैं अधिकांशतय: अपने पति के साथ ऐसे ही जाती रहूं। तो जीवन मुझे बोझ नहीं लगेगा।'' शादी के समय से अब तक लेकर वह पारिवारिक जीवन में ही रही थी। सामाजिक कार्य व बाहरी जिंदगी की गतिविधियों में उसने कभी कोई हिस्सा नहीं लिया था। और अब भी वह अमर के बिना कही कुछ काम करने जाना नहीं चाहती थी। घर की सीमाओं में ही रहना उसे प्रिय था।

दस-बारह दिन के देशाटन के पश्चात् वे लोग घर आ गये। दूसरे दिन जब अमर अपने आफिस गया तो उसके बॉस ने कहा कि लगभग एक माह के लिए साउथ अफ्रीका तथा ब्रिटेन तथा कई देशों के लिए जाना होगा, कंपनी के कुछ आवश्यक कार्यों से। उस समय उसको अजीव-सा धक्का लगा कि एक जगह जाना होता तो मैं मानवी को अपने साथ ले जाता। अब मानवी घर पर अकेले कैसे रहेगी। उसने घर जाकर मानवी को सब बताया। डार्लिंग इस बार तो मुझे अकेले जाना पड़ेगा। क्योंकि कई देशों में जाना है न।

मानवी अमर के समझाने-बुझाने से मान गयी और बोली कि तुम खुशी-खुशी जाओ मैं बनारस से अम्मां को बुला लेती हूँ और कुछ उपन्यास भी खरीद लेती हूँ। अमर के मन में कुछ धीरज बंधा। टेलीफोन से उसकी मां को बुलावा भेज दिया। वह तीसरे दिन प्रात: ट्रेन से आ गयी।

अमर साउथ अफ्रीका के लिये निकल गया। वहां उसे चार-पांच दिन रहना था। अपने काम में एक्सपर्ट होने के कारण बिजनेस डीलिंग अधिकांशतय: वही करता था। अब तक उसने जितने अनुबंध देशों से किये थे, उनमें भगवान की कृपा से सभी में सफलता प्राप्त हुई। इसलिए उसने मालिक उससे बहुत खुश थे। वह कहते थे अमर कि तुम मेरे कंपनी के अफसर नहीं बल्कि तुम एक प्रकार से मेरे परिवार के सदस्य भी हो। क्षण-भर के लिए अमर गर्व से भर उठता। साउथ अफ्रीका का काम करने के पश्चात् वह जर्मनी के लिये रवाना हुआ। उस दिन आसमान बादलों से घिरा हुआ था। इसलिये विमान की गति विमान चालक ने धीमी कर दी थी। कुछ और आगे बढ़ने के पश्चात् बादलों के झुण्ड कुछ इधर-उधर भागते हुए दिखाई दिये। और ऐसा लगा कि थोड़ी देर बाद बादल छट जायेंगे। किंतु ऐसा नहीं हुआ। दस मिन्ट ही आगे बढ़ा होगा विमान, बादल चारों तरफ से फिर आसमान में घिर आये। चालक किसी तरह से सुरक्षित स्थान पर विमान उतारने की सोच ही रहा था कि अचानक भयंकर तूफ़ान आया, चालक ने बहुत सावधानी से काम किया। उसकी तमाम कोशिशों के बावजूद भी विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और समुद्र में जा गिरा।

टी० वी और रेडियो पर विमान के दुर्घटनाग्रस्त होने की सूचनाएं दी जा रही थी। अमर के बॉस ने तनजानियां से कांटेक्ट कर पता किया कि अमर वहां के किस होटल से किस विमान द्वारा चला। जब ये कनफर्म हो गया कि उसी विमान में अमर था, तो वे बहुत दुःखी हुए। उन लोगों ने अपने विवेक से सोचा कि मानवी को एकदम से ये सूचना नहीं देंगे कि अमर उसी विमान में था। उसके मन में कुछ आशा बनी रहे तो अच्छा है। टी० वी न्यूज बुलेटिन देख-देखकर भय और आशंका से मानवी का हृदय डूब रहा था। वह चाहती थी कि जितनी जल्दी हो सके, उसको अमर के सुरक्षित होने की सूचना मिल जाये। उसकी मां उसके पास बैठकर उसे धीरज बंधा रही थी कि अमर को कुछ नहीं होगा। ईश्वर की तेरे ऊपर कृपा है। वह घर वापस आ जायेगा। तू चिंता मत कर। परमात्मा का ध्यान कर वे ही तो सबकी रक्षा करने वाले हैं।

दूसरे दिन टाटा समूह का एक उत्तराधिकारी मानवी के पास आया। धरमू काका ने मानवी को ये सूचना दी कि साहब की कंपनी से कोई साहब आये हैं आपसे मिलने, उसने कहा-''ड्राइंग रूम में बैठाओ, मैं अभी आती हूँ।'' जैसे ही मानवी ने ड्राइंग रूम में प्रवेश किया वे आदर से खड़े हो गये। उनके चेहरे के हाव-भाव पढ़कर मानवी को लगा कि जरूर कोई अनहोनी घटना घटी है। उन्होंने हाथ जोड़कर मानवी से कहा कि हम लोग ये ही पता लगा रहे थे कि अमर भाई कहां पर हैं। दो दिन पहले तो फोन पर बात हुई थी। मानवी ने कहा कि हां मुझ से हुई थी और कह रहे थे कि काम करने और घूमने-फिरने में बहुत मजा आ रहा है। वह बोले-''किंतु बहन जी अब अमर भाई हमारे बीच नहीं रहे। उस विमान का कोई भी आदमी जीवित नहीं बचा।'' ये सुनकर मानवी की बड़े ज़ोर से चीख निकली और धड़ाम से ज़मीन पर गिरी और सोफे के हैंडिल से सिर पर भारी चोट आई जिससे वह बेहोश हो गयी। घर में कोहराम मच गया। उसकी मां तथा धरमू काका और घर में काम करने वाले माली, सभी विलाप कर रहे थे। आज मानवी के भाग्य का सितारा अंधकार में डूब गया।

मानवी को कुछ घंटे के लिए एमरजेंसी में एडमिट किया गया। ये खबर आग की तरह सारे जबलपुर में फैल गयी। अमर तो जनप्रिय व्यक्ति थे। सभी अखबारों में उनके निधन का समाचार हेड लाइन में दिया गया। कुछ घंटों के पश्चात् मानवी को होश आया, डाक्टर ने इंजैक्शन दिया तत्पश्चात् हास्पिटल से घर भेज दिया। अब वह अधिकांशतयः मौन रहती। कुछ कुछ देर में जोर-जोर से रोने लगती। कहती कि अमर तुमने मुझे साथ ले जाने का वचन दिया था। फिर अकेला क्यों छोड़ गये। मानवी की मां उसे धीरज बंधाती और स्वयं तो बेटी के दुःख के साथ दुःखी थी ही। दस दिन के पश्चात् मृत्यु के बाद के सारे संस्कार, हवन आदि किये गये।

बेटा कह रहा था- ''मां मेरे साथ चलो।'' मानवी ने कहां-''तुम लोग कुछ दिन रहकर जाओ मैं जब आऊंगी तो तुम्हें फोन पर बता दूंगी'' आये हुए मेहमान सब हवन के बाद चले गये। मानवी और उसकी मां घर में रह गये। इन दिनों मानवी पूजा के समय गीता पढ़ती ताकि उसको धीरज रहे। किंतु परिस्थितियां उसे वैराग्य की ओर धकेल रही थीं।

उसने अपनी मां से कहा कि मां तुम कुछ दिनों के लिये बड़ी मौसी को भी अपने पास बुला लो। इन दिनों मेरा मन बड़ा अशांत है। मैं कुछ दिनों के लिए अपने गुरु विशाल मुनि के आश्रम में जाना चाहती हूँ। विशाल मुनि का आश्रम मध्यप्रदेश से कुछ दूर एक पहाड़ी पर था। जहां लोग ध्यान, योग और विवेकानन्द तथा बुद्ध जी के विचारों पर अध्ययन करते थे। विशाल मुनि मूर्ति पूजक नहीं थे। ज्ञानार्जन के लिये अनेकों शिष्य उनके पास आते थे। उनके आश्रम के नियम बड़े कड़े थे। जब मानवी उनके पास पहुंची तो उन्होंने कहा- ''बेटी तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा दुःख का पहाड़ टूट पड़ा है। मैं भी ईश्वर से ये ही प्रार्थना करूंगा कि तुम्हें धीरज व शांति मिले। लेकिन तुम

आश्रम के कठोर नियमों का पालन नहीं कर सकोगी। गृहस्थ आश्रम से निकलकर संन्यासी जीवन बिताना आसान नहीं होता है देवी।'' मानवी ने कहा-''आप मेरे गुरु हैं, मुझे पंद्रह दिन तो कम-से-कम अपने आश्रम में रहने दीजिए। गुरु जी क्षमा करें, इस समय उपदेश सुनने की मेरी मानसिक स्थिति नहीं है।'' समय की गंभीरता को देखते हुए विशाल मुनि ने कहा कि तुम सुलक्षणा बहन के साथ रह सकती हो। मानवी ने कहा-''गुरु जी आपको कमरा तो मुझे अलग ही देना होगा। मैं किसी के साथ नहीं रह सकती। इतनी कृपा तो आपको करनी ही होगी।''

गुरु जी बोले-''अच्छा देवी, जैसा तू चाहेगी वैसा ही यहां तुझे स्थान मिलेगा।'' मानवी की आंखें आंसुओं से भर गयी। लेकिन उसने बड़े यत्न से आंसुओं को टपकने नहीं दिया। और अपने आंचल में आंसू बांध लिये। 15 दिन रहने के पश्चात् मानवी से विशाल मुनि ने कहा कि बेटी तुम अब अपने घर जाओ। विशाल मुनि रात्रि को विश्राम के लिये जब अपने शयनकक्ष में पहुंचे तो उनको मध्यप्रदेश का अपना गांव तथा उस गांव के जमींदार सुमित राय सिंह का अनायास ध्यान आया, कि जमींदार साहब कितने सहृदय तथा कर्मयोगी व्यक्ति थे। वे सारे गांव तथा आस-पास के गरीब लोगों की समस्याओं के समाधान किया करते थे। उस समय उन्हें ये भी याद आया कि वे कालेज से पढ़कर जब गांव पहुंचते थे, तो गर्मी की छुट्टियों में मानवी अपनी मां के साथ नाना के घर आया करती थी। उस समय मानवी सात आठ साल की रही होगी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें भोला-भाला चेहरा दोनों चोटियों में लाल रंग के रिबन बंधे हुए ऐसे लगते थे जैसे गुलाब के फूल उसके बालों में टंके हों।

मानवी का वह बचपन अनायास विशाल मुनि की आंखों के सामने घूम रहा था। ये सब मानवी को स्मरण है या नहीं उन्हें इस पर संदेह था। वे सोचने लगे कि भाग्य मनुष्य को कहां-से-कहां ले जाता है। और मनुष्य अपने लिये कुछ नहीं कर पाता। जीवन की परिस्थितियां और समय भाग्य के आधार पर ही जहां चाहें खड़ा कर देती हैं।

मानवी को रहते-रहते आश्रम में पंद्रह दिन व्यतीत हो गये तो संध्या के पश्चात् एक दिन विशाल मुनि ने कहा कि अब तुम देवी अपने घर लौट जाओ। जाने की व्यवस्था में कर दूंगा।

मानवी-''नहीं गुरु जी, अब मैं घर कभी नहीं जाऊंगी। मैं घर जाने के लिये नहीं आई थी।'' मुनि ने एक बार मानवी की ओर गहन दृष्टि से देखा। वह फिर बोली-''मैं ज्ञान प्राप्त करने आई हूँ। मैं तपस्या करूंगी, उसके पश्चात् मुझे ये विश्वास है कि पुर्नजन्म में मैं अपने अमर को पा लूंगी।''

मुनि- ''इसका अर्थ ये हुआ देवी, तू विधाता से भी सौदेबाजी करेगी। अमर को पाने के लिये तू ध्यान करेगी, भगवत भजन करेगी। ईश्वर को पाने के लिये नहीं ?'' उन्होंने आगे कहा- ''तू गहराई से तो एक बार सोच ईश्वर को पाने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।''

मानवी-''गुरु जी आत्मा-परमात्मा हैं, परमात्मा प्रत्येक आत्मा में है, ये तो आप मानते हैं। इसलिए मैं अमर की आत्मा में बैठे परमात्मा को पा लूंगी। अब आप मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए। मुझे ध्यान में मग्न होने दीजिए जो प्राप्त कर सकूंगी वही करूंगी। नियम की पाबंदी मत लगाइये। क्या पता कि जहां केंद्र बिन्दु है ध्यान का, वहां स्थिर हो जाऊं। वैसे अमर तो मेरी स्वासों में बसा है, वह मेरी प्राणशक्ति है।'' गुरु जी ने एक पल मानवी की ओर देखा फिर बोले अच्छा देवी तू जीती मैं हारा। अब तू जैसी साधना करना चाहे कर ईश्वर सदा तेरे साथ होगा। मेरा भी तुझे आशीर्वाद है। तेरी साधना सफल हो।

मानवी नतमस्तक हो खड़ी-खड़ी गुरु जी को जाते हुए देख रही थी।

ooo

आत्मसम्मान

❑ सलोनी मेहरोत्रा*

वाणी अपने माता-पिता की तीसरी संतान थी। उससे छोटी एक बहन और दो बड़े भाई थे। वाणी अट्ठारह बसन्त देख चुकी थी। माता-पिता विवाह करना चाहते थे पर वाणी अभी आगे पढ़ना चाहती थी। उसका मन था कि वह उच्च-शिक्षा के लिए किसी बड़े शहर जाए। वह जैसी पढ़ाई चाहती थी वैसी उसके छोटे शहर में नहीं, किसी बड़े शहर में ही थी। माता-पिता के पास इतना धन न था कि उसे बाहर शिक्षा के लिए भेजें। हालांकि उसके दोनों भाई काफी अच्छा कमा रहे थे, पर भाभी के आगे किसी की न चली। वाणी की बहुत मिन्नतों बाद उसके माता-पिता ने उसे बाहर जाकर पढ़ने की मंजूरी दे ही दी। साथ ही यह शर्त भी रख दी कि वह उसकी पढ़ाई का पूरा खर्चा नहीं उठा पाएंगे, अतः वह स्वयं भी कमाई का कुछ बंदोबस्त करे। इस पर वाणी झट तैयार हो गई थी, वह आगे की पढ़ाई के लिए कोई भी कीमत चुकाने को तैयार थी।

मन में लगन और विश्वास लिए वाणी दिल्ली आ गई। वहां उसने एक दो कमरों का फ्लैट किराये पर ले लिया, यहाँ उसके संग तीन लड़कियाँ और रहती थीं। धीरे-धीरे सब कुछ ठीक हो गया। जल्द ही वाणी पाँच बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने लगी थी, जिससे कुछ पैसा मिल जाता था। माता-पिता पर बोझ भी नहीं बनना चाहती थी, अतः जितने रुपयों की ज़रूरत होती उतने ही घर से मंगवाती।

दिल्ली में वाणी का सबसे करीबी कोई था तो वह थी अनुदिता जो उसी के साथ रहती और पढ़ती थी। दोनों एक-दूसरे की हमराज़ थीं। वाणी पढ़ाई में सबसे तेज़ थी, इसलिए कॉलेज में सभी अध्यापक उस पर गर्व करते थे। उसे सभी शिक्षकों का स्नेह भी मिलता था। शिक्षकों में मि० शर्मा उसकी कुछ ज़्यादा ही तारीफ़ करते थे जिससे वाणी को काफी प्रोत्साहन मिलता था और इसके लिए वह उनका अक्सर धन्यवाद कर देती।

कुछ दिनों से वाणी व उसकी सहेली अनुदिता बड़ी परेशान लग रही थीं। वाणी का पढ़ने-लिखने में भी मन नहीं लग रहा था। इसे लक्ष्य कर एक दिन मि० शर्मा ने उससे बजह जाननी चाही तो उसने-''कुछ नहीं!'' कह बात टाल दी। उनके बहुत दबाव डालने पर उसने बताया, ''मकान मालिक बार-बार घर खाली करने को कह रहा है। बाकी लड़कियों ने तो अपना इन्तज़ाम कर लिया है, पर मैं और अनुदिता अभी तक मकान की तलाश कर रहे हैं। अगर, मैं यह मकान छोड़ दूंगी तो मेरे ट्यूशन के बच्चे भी आना बन्द हो जाएँगे। फिर फीस का इन्तज़ाम कैसे होगा। माँ-बाबू जी पूरा खर्चा नहीं उठा पाएँगें। कैसे होगा सब...?'' वाणी का गला रूंध गया। इस पर मि० शर्मा ने उससे बड़े प्यार से कहा, ''तुम चाहो तो मेरे घर

* कलकत्ता इलैक्ट्रिकल्स, 80/16-ए गुरुद्वारा रोड़, नाकां हिण्डोला, लखनऊ-226001

पर रह सकती हो।'' वाणी यह सुनते ही पुलकित हो उठी। आत्मीयतापूर्ण स्वरों में बोली, ''थैंक यू, सर! मैं यह खुशखबरी अभी अनुदिता को देती हूँ। अब हम फिर इकट्ठी रहेंगी, मैं और अनुदिता, सच विश्वास नहीं होता।'' कहते-कहते उसकी आवाज़ धीमी हो गई, ''सर मगर किराया कितना होगा, पहले हम चार लड़कियाँ रहती थीं और किराया प्रति लड़की ढाई-सौ रुपये पड़ता था पर अब...।'' मि० शर्मा ने मुस्कुराते हुए कहा, ''वाणी तुम किराये की चिन्ता मत करो, जितना देना चाहो, दे देना।'' वाणी ने पुन: मि० शर्मा को धन्यवाद किया और अनुदिता को यह खबर सुनाने चली गई।

वाणी और अनुदिता अगले दिन कॉलेज के बाद मि० शर्मा के घर चली गईं। मि० शर्मा ने उन्हें उनका कमरा दिखाते हुए कहा, ''ये लो तुम्हारा कमरा, जब तक चाहो रहो।''

कमरा काफी अच्छा था, घर भी खासा बड़ा था। वाणी और अनुदिता बार-बार इधर-उधर निगाह फेर रहीं थीं। मि० शर्मा ने आखिर पूछ ही लिया–''इधर-उधर क्या ढूँढ़ रही हो तुम लोग, कुछ कमी है क्या या कुछ पसन्द नहीं आया?'' इस पर वाणी सकुचाते हुए बोली, ''नहीं सर, कमी तो कोई नहीं है, यह तो आपका बड़प्पन है कि आपने हमें रहने के लिए कमरा दिया, हम आपके एहसानमन्द रहेंगे। बहुत-बहुत शुक्रिया हम तो बस आपकी पत्नी को ढूँढ़ रहे थे, क्या वे घर पर नहीं हैं, कोई परेशानी हो तो....।''

''हमारी श्रीमती जी तो मायके गईं हैं, और कोई प्रश्न...''

''नहीं सर'' मुस्कुराकर अनुदिता और वाणी ने एकसाथ उत्तर दिया।

''सर, ये मकान का किराया एडवान्स में...'' कहते हुए वाणी ने मि० शर्मा की ओर सौ के पाँच नोट बढ़ा दिये।

''अरे, इसकी अभी क्या ज़रूरत थी'' और मि० शर्मा ने पैसे बिना गिने ही जेब में रख लिए।

वक़्त अपनी रफ़्तार से बढ़ रहा था, वाणी की पढ़ाई अच्छी चल रही थी। माँ को भी पत्र लिखकर नए मकान के बारे में सूचित कर दिया था। लेकिन अभी भी एक चिन्ता उसको सताये जा रही थी वह थी, ट्यूशन के बच्चे जो अभी तक उसे नहीं मिले थे। माह की शुरुआत में ही मकान का किराया देना था।

वाणी के मन में गहरा अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था ''महीने की पहली तारीख़ है आज, अनु के घर से तो पैसे आ गए होंगे और उसने किराया भी दे दिया होगा, पर मैं पैसों का इन्तज़ाम कहाँ से करूँ। और कितना एहसान लूँगी मैं सर का...''

आख़िर वाणी ने अपनी मजबूरी सर के आगे रख ही दी और कुछ दिनों की मोहलत माँगने लगी पर इस पर मि० शर्मा ने वाणी का गाल सहलाया और बोलो, ''मैंने तुमसे पैसे पहले भी नहीं माँगे थे और अब भी नहीं माँग रहा हूँ। तुम जब तक चाहो रहो और पैसों की कोई चिन्ता मत करो, बल्कि अगर तुम्हें पैसों की ज़रूरत हो तो तुम मुझ से ले सकती हो, मुझे अपना ही समझो।''

वाणी पीछे हट गई, ''सर यह तो आपका बड़प्पन है, मैं आपके एहसानों को भुला नहीं सकती, वैसे भी आपके मुझ पर इतने उपकार हैं। मैं उनका किस प्रकार धन्यवाद करूँ, मैं नहीं जानती।''

वाणी जब भी अपने आपको देखती, मि० शर्मा के एहसानों तले दबा पाती। उसकी निगाहों में मि० शर्मा के प्रति सम्मान दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था और शायद इसीलिए वह उनकी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही बतमीज़ियों को नज़र अंदाज़ भी कर दिया करती।

वाणी अब अनुदिता से भी कटी-कटी सी रहने लगी थी यह बात अनु को बहुत खटकती क्योंकि वह जानती थी कि वाणी के दिल में मि० शर्मा के प्रति एक गुरु-शिष्या वाला सम्मान है जबकि मि० शर्मा के दिल में कुछ और ही चल रहा है। अनु ने वाणी को समझाने का प्रयास किया परन्तु वाणी इतनी अन्धी हो चली थी कि...।

आज फिर मि० शर्मा ने वाणी को अकेला देख परेशान करना चाहा पर अब की वाणी चुप ना रही। उसने उनका हाथ पीछे धकेलते हुए एक ज़ोर का तमाचा मि० शर्मा के गालों पर जमा दिया। वे एकदम सकपका गए उन्हें ऐसी उम्मीद न थी। ''बस बहुत हो गया, मैं एक नारी हूँ पर अपने आत्मसम्मान पर ठेस बर्दाशत नहीं कर सकती। गुरु और शिष्य का रिश्ता सबसे पवित्र माना जाता है पर आपने उसे कलंकित किया है, मेरी मजबूरी का फ़ायदा उठाते आपको शर्म नहीं आई। इन्हीं हरकतों की ब़जह से आपकी पत्नी आपको छोड़ कर चली गईं। अपने उपकारों के बदले आपने जो पाना चाहा वह तो... शर्म आती है मुझे'' वाणी की ज़ुबान लड़खड़ा रही थी। लेकिन आज वह स्वतन्त्र महसूस कर रही थी। उसके अन्दर दहकता लावा आज ज्वालामुखी बन बाहर जो आ गया था।

मि० शर्मा चुप थे। उनके पास कहने को कुछ न था। अनुदिता अपनी सहेली पर गर्व महसूस कर रही थी। ''बहुत-बहुत धन्यवाद, अनु!'' इससे पहले कि वह अपनी बात पूरी करती अनुदिता ने वाणी के मुँह पर हाथ रख दिया-''ये धन्यवाद की औपचारिकता हम कब से निभाने लगे, वाणी। अपनो को धन्यवाद कैसा।''

०००

गुणाढ्य

❑ भाषा सुम्बली*

पात्र

- सूत्रधार
- गुणाढ्य
- गुणवती (गुणाढ्य की पत्नी)
- अमृता (गुणाढ्य की पुत्री)
- राजा
- रक्षा मंत्री
- वित्त मंत्री
- राजा के दरबार के नवरत्न
- द्वारपाल

समय : सैंकड़ों वर्ष पूर्व का समय

दृश्य-एक

[पर्दा खुलता है। मंच पर अंधेरा है। सूत्रधार हाथ में जलता हुआ दीपक लेकर प्रवेश करता है। मंच के सामने के एक कोने में वह दीपक रखता है और हाथ जोड़कर ऊँची आवाज़ में (मंत्र की तरह) कहता है।]

सूत्रधार : हे पुण्यात्मा!
हे कवियों के कवि!
परम स्वाभिमानी...
आपकी स्मृति को प्रणाम हो!!

[इसी के साथ मंच प्रकाशित हो जाता है। अब सूत्रधार दर्शकों की तरफ आता है।]

जानते हैं आप, यह किन की समाधि है? अरे! कहाँ याद होगा आपको... ये गुणाढ्य थे... गुणाढ्य!! पैशाची भाषा के महाकवि... अज्ञान, अंधकार से लड़ने वाला व्यक्ति... लोगों का शुभ चाहने वाला व्यक्ति... साहित्य, संगीत और कला को बचाए तथा बनाए रखने के लिए जिसने अपना जीवन बलिदान कर दिया। परन्तु समय!! समय ने उसे क्या दिया??
विश्वासघात... घोर विश्वासघात! हँसे उन पर लोग...

[पार्श्व में छः-सात लोगों के हँसने की आवाज़। गुणाढ्य का नाम लेकर हँसने की ध्वनि। मंच पर अंधेरा। सूत्रधार निकल जाता है।]

---

* *बी-90/12, भवानी नगर, जम्मू।*

दृश्य-दो

[मंच प्रकाशित हो उठता है। राजा के दरबार में सभी नवरत्न गुणाढ्य पर हँस रहे हैं]

एक रत्न : महाराज, आपने सही किया जो इस गुणाढ्य नाम के मूर्ख को यहाँ दरबार में ही बुला लिया।

दूसरा : उत्तम! आज उसका घमंड चूर-चूर हो जाएगा। अति उत्तम!

तीसरा : बड़ा आया शास्त्रार्थ करने वाला।

चौथा : यह तो महा अहंकारी जान पड़ता है, महाराज।

पाँचवा : सुना है, अपने ग्राम व प्रदेश में प्रजा को अपने ज्ञान से अति आतंकित करके रखा है उसने!

छठा : जिसके पास दों समय का अन्न न हो, उसे इतना अहंकार शोभा नहीं देता... हा... हा.... हा....

[सभी हँस पड़ते हैं। तभी द्वारपाल का प्रवेश...]

द्वारपाल : (सिर नवाकर) महाराज की जय! महाराज कोई गुणाढ्य नाम का ब्राह्मण अंदर आने की आज्ञा चाहता है।

राजा : उसे आदरसहित अन्दर लाया जाए।

द्वारपाल : जो आज्ञा महाराज!

[द्वारपाल सिर झुकाकर जाता है तथा कुछ क्षण बाद गुणाढ्य को लेकर फिर प्रविष्ट होता है और पुनः चला जाता है। गुणाढ्य का प्रवेश... दरबार में चुप्पी.. उसने ब्राह्मणोचित साधारण वस्त्र धारण किए हैं। उसका तेज सारे दरबार में छाया हुआ है। परन्तु गुणाढ्य विनीत भाव से राजा को झुककर नमन करता है।]

गुणाढ्य : मेरा प्रणाम स्वीकार करें महाराज!

महाराज : (सिर हिलाकर) तुम्हारा दरबार में स्वागत है, गुणाढ्य।

[नवरत्न गुणाढ्य को उपेक्षा भाव से देखते हुए एक-दूसरे को अंग भाषा से अपनी भावना सूचित कर रहे हैं।]

पहला रत्न : तो यह है... गुणाढ्य!

दूसरा रत्न : हूँ.. महाकवि गुणाढ्य!

तीसरा रत्न : प्रजा को ज्ञान से आतंकित करने वाला, महाकवि, महापण्डित!

राजा : हुँम्म्म ... तो, हमने सुना है कि आप बड़े विद्वान हैं, महाकवि हैं।

[नवरत्न पहले राजा को जी-हुजूरी के भाव से तथा फिर गुणाढ्य को उपेक्षा के भाव से देखते हैं।]

गुणाढ्य : (दृढ़ परन्तु विनम्र भाव से) क्षमा करें महाराज... परन्तु सुनना सदा सत्य नहीं होता है। और फिर इस अनंत ब्रह्माण्ड में ज्ञानी-विद्वान तो हो सकते हैं, परन्तु सबसे बड़े नहीं।

[नवरत्नों की यथोचित भाव-भंगिमाएं झलकती हैं।]

राजा : तो... (कुछ उपेक्षा की मुस्कान के साथ)... तुम कितने बड़े विद्वान हो?

गुणाढ्य : समुद्र के तट पर एक रेत का कण या शायद उससे भी कम।

राजा	:	पर प्रजा तो तुम्हें महाकवि, तत्वज्ञानी मानती है।
गुणाढ्य	:	यह तो लोगों का प्रेम है, महाराज!!
राजा	:	क्या जानते हो तुम प्रेम के बारे में??
गुणाढ्य	:	महाराज, मैं प्रेम के बारे में केवल इतना ज्ञान रखता हूँ कि... (**एक हल्की आनंदमयी मुस्कान के साथ**).. कि प्रेम... प्रेम एक फूल की सुगंध है।... पहाड़ों पर उतरती सुबह की धूप... एक अंकुर का फूटना प्रेम है.. एक पक्षी का चहचहाना प्रेम है। प्रेम ही तो वह गुरुत्वाकर्षण है, जिससे चंद्र पृथ्वी के तथा पृथ्वी सूर्य के चक्कर काटती है।
राजा	:	(**प्रसन्न**)... और... और... क्या है प्रेम?
गुणाढ्य	:	वह भावना जिससे व्यक्ति मातृभूमि की रक्षा में बलिदान दे देते हैं, हँसते-हँसते। महाराज, प्रेम खेतों में धान का लहलहाना है।
राजा	:	(**मंत्रमुग्ध**)... और...
गुणाढ्य	:	और... प्रजा की प्रसन्नता।
राजा	:	(**प्रभावित होकर**) वाह! वाह! अतिसुंदर!
		[**राजा स्वर्णमाल गले से निकालकर, दासी द्वारा गुणाढ्य को भेंट देता है**] तुम इतनी सुंदर कविताएँ, सहज ही बोल लेते हो। इन्हें लिखते क्यों नहीं?... हम तुम्हें, तुम्हारी एक-एक रचना के लिए एक स्वर्ण-मुद्रा देने का वचन देते हैं।
गुणाढ्य	:	महाराज आप धन्य हैं। आप... (**खुशी से झूम कर**) आप महान हैं महाराज। आपने एक कवि का आदर करके अपनी उदारता तथा महानता का परिचय दिया है। आप महान हैं महाराज... आप धन्य हैं।
पहला रत्न	:	महाराज की...
सभी गण	:	जय हो! जय हो! जय हो!
दूसरा गण	:	महाराज की कीर्ति...
सभी गण	:	अमर रहे! अमर रहे! अमर रहे!
गुणाढ्य	:	(**हाथ जोड़कर**) तो मुझे आज्ञा दें महाराज!
राजा	:	अवश्य!!
		[**इसी के साथ मंच पर अंधेरा।**]

दृश्य-तीन

[**गुणाढ्य के घर का दृश्य। पत्नी सामने बैठकर सफाई कर रही है। मंच पर एक फटी-सी चटाई, मटका तथा कुछ ग्रंथ बिखरे हैं। बेटी अमृता किसी कपड़े से पिता की पुस्तकें साफ कर रही है।**]

अमृता	:	(**माँ से**) माँ तुमने सुना? मेरी सखी के पिता जी ने तीन दुधारू गाएँ खरीदी हैं।
माँ	:	(**प्रभावित होकर**) अच्छा!!
अमृता	:	बता रही थी, अब वे नगर जाकर दूध बेचेंगे तथा खूब धन कमाएँगे फिर एक सुंदर घर बनाएँगे!!
माँ	:	हाँ बेटी! वे तेरे पिता जी जैसे थोड़े ही हैं। उन्हें तो बस इन ग्रन्थों, पोथियों से ही समय मिले तब वह हमारी चिन्ता करें। अरी, अगर उन्हें अपने घर-

परिवार की थोड़ी भी चिंता होती तो आज हमारी यह हालत न होती।
[पार्श्व में गुणाढ्य पुकारता है अमृता, अमृता]

अमृता : माँ, पिताजी आ गए...

गुणवती : तो क्या मैं दौड़कर उनकी आरती उतारने जाऊँ? या रास्ते में फूल बिछाऊँ? कल से एक तिनका अनाज नहीं है घर में!
[गुणाढ्य का प्रवेश... बेटी दौड़कर पिता के पास जाती है, पिता उसे स्नेह देता है।]

गुणाढ्य : पुत्री, आज हम बहुत प्रसन्न हैं।

गुणवती : हुँह... **(चिढ़कर एक तरफ चली जाती है)**

गुणाढ्य : **(उसके पीछे-पीछे चलते हुए, अमृता से, जो कि गुणाढ्य के साथ-साथ चलती है)** पुत्री! हम तुम्हारी माता को एक शुभ-समाचार देना चाहते हैं।
(गुणवती चिढ़कर मुँह फेर लेती है)
पुत्री! अपनी माता से कहो, हम राजा से मिलकर आए हैं।
(गुणवती चकित होकर गुणाढ्य को देखती है। गुणाढ्य कुछ कदम टहलता है, पुत्री उसके साथ-साथ टहलती है।)
पुत्री! अपनी माता से कहो कि महाराज हम से अति प्रसन्न हुए तथा उन्होंने हमें **(जेब में से स्वर्णमाल निकालकर दिखाते हुए)** यह भेंट दी है।
(गुणवती भेंट देखकर खुशी से चीख पड़ती है। तेज़ गति से चलकर पति के पास आती है तथा माला छूकर अचंभित होकर कहती है...)

गुणवती : स्वामी! क्या आप सत्य कहते हैं? यह स्वर्णमाल है?
(गुणाढ्य माला पत्नी को पहनाकर अपने आसन पर बैठता है, तथा अमृता पीछे-पीछे चलकर बैठती है।)

अमृता : पिता श्री! महाराज से आपने मेरे लिए कुछ नहीं माँगा?

गुणाढ्य : धैर्य रखो बेटी, और देखती जाओ आगे-आगे क्या होता है।
(इतने में गुणवती पानी का प्याला लेकर गुणाढ्य को देती है)

गुणवती : **(पानी देकर)** यह लीजिए स्वामी... जल ग्रहण कीजिए... **(प्रेम से)** आप बहुत थक गए होंगे।

गुणाढ्य : **(कटाक्ष करते हुए)** भागवन्ती आज बड़ी कृपालू हो हम पर।

अमृता : सोने का हार जो लाया!

गुणवती : चुप! बहुत बातें करती हो तुम! **(फिर गुणाढ्य से)** और... क्या कहा राजा ने?

गुणाढ्य : गुणवती आज बहुत शुभ दिन है, महाराज मुझसे न केवल प्रसन्न हुए, अपितु मुझे यह स्वर्णमाल भी उपहार में दी... और... वास्तविक शुभ समाचार तो मैंने अभी तुम्हें कहा ही नहीं..

गुणवती : **(आतुर होकर)** तो कहिए न स्वामी, क्या है वह शुभ समाचार?

अमृता : हाँ पिता जी बताइए ना शीघ्र!

गुणाढ्य : वे मुझे मेरी प्रत्येक रचना पर एक-एक स्वर्ण मुद्रा देंगे। उन्होंने ऐसा वचन दिया है।

गुणवती : आश्चर्यचकित क्या? सत्य कहा आपने स्वामी? महाराज इतने महान हैं... धन्य हो प्रभु!

गुणाढ्य : गुरु जी से भी मिलकर आ रहा हूँ। कह रहे थे कि अब तो सपना साकार होता प्रतीत होता है। मैं एक बृहत्कथा लिखूँगा.. एक विशाल बृहत्कथा... जिससे हमें अपार धन मिल सके।

अमृता : क्या अपार धन प्राप्त करना ही आपका सपना है पिता जी?

गुणाढ्य : नहीं पुत्री! उस धन से हम एक गुरुकुल खोलेंगे। गाँव-गाँव में पाठशालाएँ खोलेंगे। निर्धन बच्चों में शिक्षा फैलाएँगे।

गुणवती : **(आशा की मुस्कान के साथ)** और... क्या करेंगे?

गुणाढ्य : **(खड़ा होकर, टहलते हुए)** गुरुदेव की कृपा से एक ऐसा गुरुकुल बनाना है जहाँ संगीत **(पार्श्व में सितार बजता है।** सिखाया जाएगा। नृत्य... **(पार्श्व में तबला और घुँघरू बजते है)** सिखाया जाएगा। जहाँ काव्य, दर्शन, वास्तु, गणित, ज्योतिष, योग, चिकित्सा, आयुर्वेद, शस्त्रकला, इत्यादि सभी प्रकार की विधाएँ सिखाई जाएँगी लोग दूर-दूर से आएँगे।

गुणवती : **(निराश)** यह सब तो ठीक है, पर हम कभी अपने लिए एक घर बना पाएँगे या आजीवन इसी कुटिया में जीवन बिताना है?

अमृता : हाँ पिता जी मेरी सहेली के पिता जी नगर जाकर नया घर बना रहे हैं।

गुणाढ्य : पुत्री हम तो वह घर बना रहे हैं, जहाँ हमारी संस्कृति, हमारा भविष्य सुरक्षित रहेगा, फलेगा-फूलेगा..

(गुणवती निराशा सूचक लंबा श्वास छोड़कर उपेक्षा भाव से अमृता से कहती है)

गुणवती : चल री, हम घर का कुछ कामकाज ही कर लें, इन्हें तो बस गुरुकुल की ही चिन्ता है।

(दोनों माँ-बेटी चली जाती हैं, गुणाढ्य हल्की मुस्कान के साथ आकाश की ओर देखता है।)

गुणाढ्य : **(आकाश की ओर)** हे प्रभु! आप धन्य हैं।

[मंच पर अंधेरा हो जाता है।]

दृश्य-चार

[गुणाढ्य ने पोथियां लिख-लिख के घर को भर रखा है। वह उन्हें लिखता जा रहा है, फिर उन्हें पढ़कर एकत्रित कर रहा है। अमृता पिता के लिए जल लेकर प्रवेश करती है।]

अमृता : पिता जी आप इतने महीनों से यह बृहत्कथा लिख रहे हैं यह समाप्त कब होगी?

गुणाढ्य : बस पुत्री यह समाप्ति की ओर अग्रसर है। हाँ सुनो क्या महाराज के आने की सभी तैयारियाँ हो गई हैं। जाओ जाकर अपनी माता की सहायता करो।

अमृता : पिता श्री क्या महाराज आपकी इस पूरी बृहत्कथा को सुनेंगे आज?

गुणाढ्य : नहीं पुत्री, उनके पास इतना समय कहाँ? उनके वित्तमंत्री मेरा एक-एक श्लोक गिनेंगे। उन्हें मुझे उतनी ही स्वर्ण मुद्राएँ जो देनी हैं। कुछ हज़ारों-लाखों में मिलेंगी हमें स्वर्ण-मुद्राएँ।

अमृता : लाखों में... माँ सुना तुमने हमें लाखों स्वर्ण मुद्राएँ मिलेंगी... लाखों...

(गुणवती मंच पर दौड़कर आती है)

गुणवती : हाय राम! लाखों में स्वर्ण मुद्राएँ मिलेंगी। हे प्रभु! आप धन्य हैं। **(गुणाढ्य से)** मेरी मानिए, गुरुकुल-वुरुकुल बाद में बनाते रहिए, पहले हम अपने लिए एक घर बना लेते हैं...

[पार्श्व में राजा के अंगरक्षकों की ध्वनि]

अंगरक्षक : सावधान... राजाधिराज, महाराज पधार रहे हैं.. **(नगाड़ा बजता है)**

(गुणाढ्य, पुत्री तथा पत्नी सहित एक कोने में खड़ा हो जाता है। सब हाथ जोड़े, नमन की मुद्रा में हैं। राजा का दल-बल सहित प्रवेश...)

गुणाढ्य : **(राजा से)** महाराज की जय हो।

गुणवती और अमृता : महाराज की जय हो।

राजा : **(मंच पर पड़ी पाँडुलिपियाँ देखकर घबरा जाता है)** इतनी पाँडुलिपियाँ!

गुणाढ्य : हाँ महाराज, सम्पूर्ण बृहत्कथा लिखित है इन पुलिंदों में।

राजा : **(पहले मंत्रियों की तरफ देखता है जिनमें से एक के हाथ में मोर-पंख तथा कागज़ है, फिर गुणाढ्य से कहता है।)** वह सब तो ठीक है परन्तु इतनी सारी पाँडुलिपियाँ।

वित्त मंत्री : **(मोर पंख से कागज़ पर लिखते हुए)** तो कहो कितने सौ श्लोक हैं तुम्हारे?

गुणाढ्य : **(चकित)** सौ? सौ नहीं महाराज, सहस्त्र नहीं, पूरे दस लाख श्लोक लिखे हैं मैंने।

राजा : दस... लाख....!

मंत्री : दस लाख...!

सारा दल : **(एक साथ)** दस लाख!

वित्त मंत्री : **(राजा से)** महाराज दस लाख श्लोकों का अर्थ है **(कुछ गिनते हुए)** दस लाख स्वर्ण मुद्राएँ... हमारा राजकोष तो खाली हो जाएगा महाराज।

रक्षा मंत्री : **(राजा से)** और महाराज यदि पड़ोसी देश ने हम पर आक्रमण कर दिया तो?

महाराज : अरे! इसके कहने से क्या होता है, हम इसकी बृहत्कथा के बदले इसे इतनी मुद्राएँ देंगे?

गुणाढ्य : **(चिंतित होकर)** महाराज परन्तु आप ही ने तो...

महाराज : **(गुणाढ्य की बात काटकर)** हमने कुछ नहीं कहा था।

गुणाढ्य : यह आप क्या कह रहे हैं, महाराज!

महाराज : मंत्री चलिए, सारथी रथ चलाओ...

(राजा जाता है, कुछ देर तक चुप रहने के बाद गुणाढ्य अपनी लिखी हुई बृहत्कथा को देखकर चिल्ला पड़ता है)

गुणाढ्य : **(चीखकर)** नहीं, नहीं महाराज, यह विश्वासघात है। मुझे... मेरा गुरुकुल... मेरे सपने, मैं... मैं... **(बौखलाकर)** नहीं यह मेरे साथ नहीं हो सकता **(अब गुणाढ्य पर पागलपन छा रहा है)** वह मंच पर तीव्र गति से दाएँ से बाएँ तथा बाएँ से दाएँ जा रहा है। वह चीख-पुकार रहा है, पर उसे अपनी वेदना कहने के लिए शब्द नहीं मिल रहे हैं। यह कैसे हो सकता है... नहीं... नहीं।

[गुणाढ्य गिर पड़ता है। गुणवती दौड़कर उसे संभालती है तथा अमृता

उसे जल पिलाती है] अब कुछ पल की शांति के बाद... गुणाढ्य कहीं से एक हवन-कुण्ड लाता है तथा मंच पर बीच में रखकर सभी पुलिंदो को अपने पास बिछा देता है। उसके चेहरे पर एक आत्मसम्मान है तथा एक गहरी पीड़ा भी।

गुणवती : यह आप क्या कर रहे हैं स्वामी, अपने-आप को संभालिए, स्वामी!

अमृता : **(पिता के पास जाकर)** पिता श्री, महाराज की बातों से इतने विचलित ना हों पिता जी।... पिता जी आप हवनकुण्ड में अग्नि क्यों जला रहे हैं? आप अपनी बृहत्कथा को कहीं अग्नि में नष्ट तो नहीं करना चाहते?

(तब तक गुणाढ्य शांत परंतु गंभीर भाव से एक-एक पन्ना निकालकर अग्नि में स्वाहा कर देता है, तभी अमृता शोर मचाती है)

नहीं, पिता जी रुक जाएँ। पिता जी **(इस प्रकार अमृता चिल्लाते हुए मंच पर दौड़ती है और कहती है)**

अरे कोई रोकिए मेरे पिता जी को, वे अपनी बृहत्कथा को अग्नि में नष्ट कर रहे हैं। कोई बचाओ यह मेरे पिता जी की अमूल्य निधि है।

(इतने में गाँव के आस-पड़ोस के लोग आकर गुणाढ्य की बृहत्कथा के पन्ने उनसे छीनकर पाँडुलिपियों को सुरक्षित करने लगते हैं)

सभी लोग : गुणाढ्य यह आप क्या कर रहे हैं? महाकवि अपनी रचना को इस प्रकार क्रोध में नष्ट न कीजिए....

गुणाढ्य : हट जाओ सभी। मैं इस बृहत्कथा का पन्ना-पन्ना अग्नि में स्वाहा कर दूँगा। मुझे मत रोको। **(लोग गुणाढ्य को पकड़कर दूर ले जाते हैं। पर वह अब और अधीर होकर मंच पर पड़ी बृहत्कथा को हवा में फाड़कर फेंक रहा है। कुछ पूरे-के-पूरे पुलिंदो को ही हवा में तितर-बितर कर, तो कुछ को हवनकुण्ड में डालकर समाप्त कर रहा है और इसी क्रिया में वह अपना संतुलन खोकर सिर पकड़कर गिर जाता है। तथा गुणवती उसकी नब्ज़ देखकर चीख पड़ती है।)**

गुणवती : नहीं... स्वामी आपने अपने प्राण क्यों त्याग दिए। आप इस प्रकार क्यों हमें छोड़ के जा रहे हैं।

[अमृता चीख-चीख के विलाप करती है। पार्श्व में राजा अपने मंत्री से कहता है।]

राजा : मंत्री जी लगता है यह विलाप की ध्वनि गुणाढ्य के घर से आती हुई प्रतीत हो रही है।... सारथी रथ वापस ले चलो।

[राजा गुणाढ्य के घर पहुँचते हैं। वहाँ मातम हो रहा है। एक तरफ पड़ोस की स्त्रियाँ बैठकर रो रही हैं और दूसरी तरफ कुछ स्त्रियाँ शव के पास चीखती हुई गुणवती को दिलासा दे रही हैं। अमृता पिता के शव को देख कर रो रही है।]

राजा : महाकवि, उठिए... गुणाढ्य आप... यह क्या हुआ आपको **(शव की तरफ हाथ बढ़ाता है परन्तु अमृता उनका हाथ झटक देती है)**

अमृता : दूर हट जाइए महाराज, हाथ मत लगाइए मेरे पिता जी को।... **(क्रोध में)** आप ही उनके हत्यारे हैं महाराज। आप ही ने उनकी हत्या की है।... मेरे

पिता जी आपके राजकोश के लोभी नहीं थे। परंतु आप ही की प्रजा की भलाई के लिए वे एक गुरुकुल बनाना चाहते थे।
आपने उनकी भावनाओं का उपहास किया। एक सच्चे पुण्यात्मा की हत्या का पाप आपके नाम है। आपने उनका स्वप्न चूर-चूर कर दिया... महाराज!
(**शव की तरफ आकर**) परन्तु मैं, पिता जी आपकी पुत्री अमृता यह प्रण लेती हूँ कि मैं आपका अधूरा स्वप्न पूरा करूंगी।
मैं प्रण लेती हूँ पिता जी...
मैं आपका स्वप्न पूरा करूँगी,
मैं पूरा करूँगी आपका स्वप्न।
[अमृता शव के चरणों में बैठ जाती है। राजा सिर झुकाकर अमृता की ओर धीरे-धीरे चलता है और उसके शीश पर अपना हाथ रखता है। इसी के साथ मंच पर अंधेरा होने लगता है तथा पर्दा गिरता है।]

०००

सुबह होने तक

❑ डॉ० जितेन्द्र उधमपुरी

तुम दे दो मुझको चाहे कितनी
यंत्रनायें, यातनायें,
कर दो भले ही मुझे दण्डित
पर नहीं होगा कभी
मेरा मनोबल खण्डित।

मैं अपराजेय
मुझ में कष्ट सहने की असीम क्षमता।
मुझ से उपजेगा साहस, संघर्ष,
जलती रहेगी मुझ में रात-दिन
आग आत्मबल की।
मैं साहसी, निर्भीक
अग्निपुरुष हूँ एक,
मैं नहीं पीऊँगा
समझोतों का सलिल अभी।
मैं हिमशिलाओं को
नहीं टूटने दूंगा अपने अन्दर
जीवित रखूंगा अनंत तक।
कबसे छटपटा रहे हैं
मेरे भीतर
द्वंद्व और अंतर्संघर्ष।
मैंने ज़िन्दगी का चिराग़
बचा कर रखा है अभी
तुंद और तेज़ हवाओं में।
यदि
साथ चलने का इरादा है तो
अपने ज्वालामुखी बचा कर रखो,
तूफ़ानों, चक्रवातों को सजा कर रखो
मुझ में खोने तक
सुबह होने तक।

०००

भाषांतर (डोगरी)

तेरे बारे में

❑ मूल० डॉ० शिवदेव सिंह मन्हास
अनु० स्वयं लेखक*

तेरे बारे में
जितना सोचता हूँ
उससे भी सौ गुणा कम
तुम्हें समझता हूँ
और उससे भी
कई लाख गुणा कम जानता हूँ।
क्या यह
सोचने,
समझने
और जानने वाली संख्या में
हेर-फेर नहीं हो सकता।
मैं कम सोचूं
अधिक समझूं
और उससे भी
ज़्यादा जान जाऊं तेरे बारे में
अथवा
कुछ न सोचूं
कुछ न समझूं
और कुछ भी न जानूं तेरे बारे में। ०

मैं और चांद

बचपन में मैं
चांद से बातें करता था
उससे हर वह
चीज़ मांगता था
जो कि माँ के पास
नहीं होती थी
माँ के पास
घर के सैंकड़ों काम थे
पर मेरे लिए
फुर्सत नहीं थी
और चांद के पास
कोई काम न था
और फुर्सत ही फुर्सत थी।
वैसे चांद भी मुझे
कभी-कभी ही मिलता था।
पर जब मिलता था
तो फुर्सत
निकाल कर मिलता था।
चांद मुझे अब भी
प्यारा लगता है।
माँ मुझे
चांद कह कर पुकारती है।
काश!
मैं आज उनका चांद बन पाऊं। ०

---

* *डोगरी विभाग, विश्वविद्यालय जम्मू।*

रावण की सोच

रावण,
मेघनाद
और कुंभकर्ण के पुतलों को
बस आग लगने ही वाली है
हज़ारों लोग
तमाशा देखने के लिए उत्सुक हैं।
राम और उनके अनुचरों ने
जाने कब आना है?
वे तो नगर
झांकी के लिए गए हैं।
सांझ ढल रही है
दूर जाने वाले लोग
वापस घर लौटने को उतावले हैं।
राम जी ने
न जाने कब आना है?
रावण का पुतला सोच रहा है
राम के बारे में
लोगों के बारे में
और फिर अपने बारे में।
उसे हमेशा की तरह
विश्वास है
कि इस बार भी राम
सिर्फ उसके पुतले को ही
जला पाएंगे
उसे नहीं
क्योंकि
उसे मारने का सामर्थ्य
किसी राम में नहीं
वह भी
उस अविनाशी राम की तरह
घट-घट में विराजमान है/
अमर है।

ooo

भाषांतर (उर्दू)

❑ मूल० डॉ. के. सी. दुबे*
❑ अनु० कुलदीप कुमार**

ग़ज़ल

हमको आँखों पे बिठाए रखिए।
प्यार की रस्म निभाए रखिए।
है कठिन यह तेज हवाओं का सफर
दिल मुसाफिर का लगाए रखिए।
नफरतों के हैं अंधेरे हर-सू
प्यार का दीप जलाए रखिए।
हों न उम्मीद से खाली आँखें
ख़्वाब कुछ इनमें सजाए रखिए।

ooo

ग़ज़ल

कुछ तो हम भी राहे, खुदा दें।
चन्द भूखों को खाना खिला दें।
नफरतों का चलन अब मिटा दें
आओ-बिछड़ों को फिर से मिला दें।
बख़्श दे, दुश्मनों को माफी
दोस्तों को वफ़ा का सिला दें।
बुग-ओ-नफरत को दिल से भुलाकर
शोला-ए-दुश्मनी को बुझा दें।
हम तो हैं ज़िंदा दिल लोग यारो
हम तो गाली के बदले दुआ दें। o

---

* *ए.आई.आर., चंडीगढ़*
** *गाँव शहर छन्नी, डाकघर फिरोजपुर कलां, तहसील पठानकोट, जिला गुरदासपुर, (पंजाब)-145 023*

लड़की सुनती पहाड़ को

❑ डॉ० देवव्रत जोशी*

वह बोलती है (अकेली-होती जब)–
पहाड़ की ज़ुबान में।
उसका मासूम चेहरा
पत्थरों के बीच खिला फूल है
बेतरतीब लटें–
झुके बादलों को परेशान करतीं-सी

मैंने कहा–"खींचूं तुम्हारा फोटो?
लिखूं तुम पर कविता?
पढ़ोगी मुझ से? पहाड़ छोड़कर
आओगी मेरे साथ?"

वह कुछ नहीं बोली–
उसका उदास चेहरा चुप रहा
अदृश्य को देखती रहीं आंखें उसकी–

दोनों हथेलियां टिकाये पत्थर पर।

(वत्सल होता है हिमखण्ड भी!)
वह कुछ नहीं बोली/बड़ी देर तक
उसकी दृष्टि ने लेकिन
मुझे बना दिया नदी।

मैंने महसूसा निमिष-भर
बिना बोले कितना कुछ कह दिया
पर्वत-पुत्री ने उस दिन
मेरी वाचालता/गूंगी है तब से

सच तो यह कि बोलता तो पहाड़ है
बच्ची सुनती है–
सिर्फ पहाड़ को!

०००

---

* *28, वेदव्यास कालोनी नं. 2, रतलाम, म.प्र.-457 001*

तवी

❑ डॉ० अरूणा शर्मा*

तवी का बहना, फैलना, टूटना
किसके लिए,
अंतरिक्ष पर उसके
कौन फैल जाता था
आकर चुपचाप
जिसके फैले विस्तार को महसूसने
वह दौड़ती रही
वह तुम थे क्या?
क्या तुम थे?
ओ चन्द्रभाग!

गहरे बहुत गहरे
उसके अन्तर से भी अधिक
वह पत्थरों से टकरा टूटती नहीं थी
छलछलाती भाग रही थी
उठती गिरती
लहर-लहर

तुम्हारा संदेशवाहक चाँद
आता था-जाता था
लहरों पर उसकी उड़ेलता
तुम्हारा संदेश
अपनी आकृति
बहाने से देख जाता आईना
संग से हो जाती वह धवल
और धवल
झिलमिलाती, शताब्दियों से भागती
कामना करती तुम्हारी
तुम्हारे तटों को तोड़कर
आने वाले उत्ताप की

उस दिन
फैल जाओगे तुम
अपने बान्धों से निकल
कमनीय उस नदी के जलप्रदेश में

लहराती है आज भी
लेकर चाह
अन्तिम क्षण विलीन होना तुम में
ज़रा-मृत्यु के सारे बन्धन तोड़ ०

मेरे जन्मदिन पर...

मैं मुस्कुराई
किया आह्वान
अपनी कामनाओं का
रचा शब्द संसार
बुने ताने-बाने

फूलों के कानों में
उड़ेला प्रेम, भंवरा होकर
दिशा-दिशा उड़ी मैं
स्वर लहरियों पर तैरती
छू लिए दर्द समूची पृथ्वी के
जन्म के दिन

मौसम बदला
महसूस किया मैंने
आसमान सिकुड़ा नहीं
पर कम पड़ता गया
मैंने फैलाआ आँचल और
आसमान को विस्तार दिया

सूरज के घोड़ों को
अपने मन की दी रफ्तार
आज फिर जिआ मैंने खुलकर
भला लगा दिन
जब अन्धे के हाथ गिरी लाठी थमा दी ०

---

* 54 ए/बी गांधीनगर जम्मू

विसर्जन

❑ शक्ति सिंह*

तुम्हारे मृग नयनों की कोख से
हुआ था मेरा दूसरा जन्म
और मैं हिमालय पर
एक अकेले साधू की तरह
बिना धूंए के जलता भी रहा
अपने ही कोहरे में छुपकर
पहाड़ों से गिरता भी रहा।
तुम्हारे मन पे
अपने पूर्वजन्म की
न भूली स्मृतियों का भारी सर रख कर
मैंने हमेशा के लिए
आंखें मूंद ली थीं। ०

दुःस्वप्न बिसरत नाहीं

आज फिर रोके हैं मैने अपने हाथ
तुम्हें फोन करते-करते
ऐसा क्यों मन चाहा आज
कि मन के चाहने को मैंने मुश्किल से रोका!
सच कहूं तो
एक दूसरे को जानने की जिज्ञासा ही थी प्रेम
एक दिन
तुमने मांगी 'मुक्ति' मैंने दी
एक दिन मैंने मांगा तुम से
तुम्हारा हंसते रहना, कुछ भी न गंवाना
तुमने दिया
'सच!'
कितना सहज हो गया है आज
सपनों का टूटना
और उनके टूटने की आहट भी न आना
तुम समझ सकते हो अगर
तो मैं बता सकता हूं शायद
कितना दु:खद होता है
लंबे खेतों का कहीं खत्म हो जाना
किसी मां का
मृत बच्चे को जन्मना
और
एक सपने के टूटने से
सारे सपनो का बिखर जाना! ०

---

* *मोहल्ला कश्मीरी, अखनूर*

अस्मिता की पहचान

❑ प्रेम विज*

कभी आपने देखा है।
स्वयं को
खूंटी पर टंगे वस्त्र की तरह
लोग अक्सर खूंटी पर
यादें टांग देते हैं
पुरखों की अस्थियां भी
गंगा में विसर्जित करने से पूर्व
लोग टांग देते हैं
खूंटी पर
कुछ लोग खूंटी पर
ईमान भी टांग देते हैं
यह खूंटी की हिम्मत है कि
वह धरोहर के रूप में
सब कुछ सहेजे रखती है
पुरखों की अस्थियां
आदमी का अस्तित्व
उस की अस्मिता और ईमान को भी
और फिर मांगने पर
जस की तस चदरिया धर देती है
दरअसल खूंटी
अस्मिता की पहचान है हमारी
जिस पर हमारे पुरखों की
असंख्य परी कथाएं तो
डेरा डाले ही रहती हैं
टंगे रहते हैं आशीर्वाद
जो बोधी वृक्ष की तरह
हम में
ज्ञान की अनन्त सम्भावनाएं
जगाते हैं। ०

चेहरे

सभी ने
मूर्ति को देख
खूब सराहा
पूजा और
मस्तक झुकाया
लेकिन सभी
उन हाथों को
भूल गये
जिसने पैरों तले दबी मिट्टी को
रूप दिया मूर्ति का
किसी ने भी नहीं
जानना चाहा
पहचानना चाहा
उस चेहरे को
उन उंगलियों को
जिन्होंने प्राण-प्रतिष्ठा कर
मिट्टी को देवता बना दिया
भला कौन जान पाया है
ढूंढ़ पाया है
उस चेहरे को
जो चेहरे बना रहा है।

०००

* मकान नं. 1284, सैक्टर 37-बी, चण्डीगढ़-160 036

पत्ता

❑ धर्मपाल साहिल*

पत्तों से नाता तोड़ कर
शाख का साथ छोड़ कर
तेज हवा संग उड़ते
पत्ते को तने ने टोका
जड़ों ने रोका
हम से दूर मत जाओ
अभी भी वापस आ जाओ
पत्ता उड़ान पर था
जोश के उफान पर था
हंस कर बोला
एक जगह जुड़े-जुड़े जीना
भी कोई जीना है
यह ज़हर मैंने
अब और नहीं पीना है
मैं आकाश को चूमूंगा
बादलों संग घूमूँगा
तभी हवा को थमना पड़ा
पत्ते को धरती पर गिरना पड़ा
शाख से टूट कर
अपनों से टूट कर
पत्ता पैरों तले दब गया
मिट्टी में मिल गया
दूसरों के परों पर कोई
कितनी देर उड़ पाता है
अपनों से टूट कर कोई
कितनी देर जी पाता है।

मौन हुई आकृतियां सारी

❑ राजेन्द्र निशेश**

सपनों की घाटी में ठहरा
देखो गहन अंधेरा!

मन के दिये बुझे हैं सारे
व्याकुलता इठलाती,
रात सजी तारों की लेकिन
रास-किरण न भाती।

अम्बर की छाती लो पूछे
उगेगा कब सवेरा!

मौन हुई आकृतियां सारी
अधरों पर हैं ताले,

आँसू की मदिरा पी-पी कर
लोग हुए मतवाले।

कंगाली ने हर आंगन में
डाल रखा है डेरा!

ज़ख़्मी पाँव चलते हैं जाते
मंज़िल न मिल पाती,
राहगीर सब लूट रहे हैं
आशा नहीं जग पाती।

धूप सरीखी लौट गई है
ऐसा समय का फेरा!

ooo

---

* *1677-(T[3] सैक्टर-3) तलवाड़ा टाऊनशिप 144216 (पंजाब)*
** *2698, सैक्टर 40 सी. चण्डीगढ़-160036*

दिल्ली

❑ मनु स्वामी*

जंगल से
आकर्षक नगर में
तब्दील होने के बाद
मैंने स्थायित्व चाहा था।

नगर के मध्य
ऐसा महल पाकर
जो कुबेर का भी पानी उतार दे
मैं इठला उठी थी।

इसी महल में
गृहस्वामिनी के शब्द-बाण से आहत अतिथि ने
महासमर की जो कहानी लिखी
उसे याद कर मेरा रोम-रोम
आज भी काँप उठता है।

दूर-दूर से
मेरे सम्मोहन में बँधे
कैसे-कैसे आक्रान्ता आए और
मैं बार-बार नोची-खसोटी गयी।

उनमें से कुछ
यहाँ ऐसे घुल- मिल गये
कि मेरे वैभव में
चाँद- तारे टाँकते हुए
खुद भी खूब फले-फूले।

उस अज़ीम दौर में
ऊँची-ऊँची दीवारों के पीछे
मैंने क्या नहीं देखा
ईद और फाग की रौनकें
हवेलियों की महफिलों में गालिब की गज़लें।

एक ऐसा भी दौर गुज़रा
जब समन्दर-पार से
ऐसे लोग आ धमके
जिन्होंने मेरी पहचान भी बदल दी थी।

हां! मेरा वह सरपरस्त
जो तब भी तना रहा
जब उसके बच्चों के सिर
उसे बतौर नज़राना पेश किये गये
तश्तरी में रखकर
मेरे अस्तित्व के किसी हिस्सें में
कसमसाती है उसकी प्रतीक्षा।

एक दिन
आधी रात को मुझे लगा
मेरा वैभव लौट रहा है
क्योंकि मैं दुल्हन- सी सजी थी।

आजकल मुझे
वही दिन याद आ रहे हैं
जब समन्दर-पार से
लोग आ धमके थे।
मैं आशंकाओं का बोझ
सिर पर उठाए रखना नहीं चाहती
अतः भविष्य के प्रति
आशावान् होकर जी रही हूँ
इतना कुछ सह
और देखकर भी।

ooo

* 46, अहाता औलिया मुजफ्फरनगर- 251002 उत्तर प्रदेश

कोई पुरानी बात

❑ जसविंदर शर्मा*

आओ फिर से कोई पुरानी बात कहें

कितने मौसम कुछ लम्हों में बीत गए
गुल्ली-डंडा, लुक्का-छिपी,
आंख-मिचोनी के खेलों में
मैंने तुमको, तुमने उसको, उसने मुझको
कसके पकड़ा, डट के डांटा
कान मरोड़े, चपत लगाई
तख़्ती की कलमों ने अक्सर
इक-दूजे की स्याही ली थी।

मेरे भैया की शादी पर
कितने बार
मुंडेरे तेरे बोझ से दब कर चिंहुक उठे थे
चांद की हर महफिल में हमने
हर लम्हे को पायल बांधी
कितने ऊंचे महल बनाए
बालू की कच्ची परतों से
आओ फिर से वही पुरानी बात कहें।

ooo

* *5/2 डी, रेलविहार, मंसादेवी, पंचकूला-134109 हरियाणा*

आदमी का भरोसा : आदमी पर भरोसा

❑ केवल गोस्वामी*

''काला सूरज'' और दूसरा नाटक 'समय वो समय' जिसका ज़िक्र आवरण पृष्ट पर नहीं है, फ्लैप पर भी नहीं है, लेखक अनुवादक-निर्देशक की टिप्पणी में भी नहीं कमोवेश पहले नाटक से अधिक संभावनापूर्ण है यद्यपि आश्चर्यजनक ढंग से दोनों नाटकों में एक समान बात है कि नाटकों के लेखक का आदमी पर से भरोसा उठ गया है। गनीमत है कि आदमीयत का ज़िक्र उसने प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया। आदमी जो इस सृष्टि की सब से सुन्दर रचना, सार्थक रचना है, उस पर से भरोसा उठ जाना एक चौंकानें वाली बात है बल्कि यों कहें कि गतिशीलता की इतिश्री हो गई है। 'काले सूरज' की कल्पना कमोवेश कुछ इसी तरह की है। सूरज-जो प्रकाश का स्त्रोत है, वह प्रकाश जो अदृश्य से दृश्य की ओर ले जाता है, वही अगर काला हो गया। (ग्रहण की कल्पना हमारे पुराणों में है, जब स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे उसकी मुक्ति के लिए दान-पुण्य करते हैं; प्रार्थना करते हैं और अंततः मुक्त होने पर चैन की सांस लेते हैं, तो सृष्टि का अंत ही हो जाएगा। निराशा, कुण्ठा, अवसाद, संत्रास, हत्या-आत्महत्या या मृत्यु के सिवाए कोई रास्ता नहीं बचता। यह मानने में थोड़ी दुविधा होती है कि किसी भी कृतिकार का यह अंतिम उद्देश्य हो सकता है कि वह पाठक-श्रोता-दर्शक या समाज को उस बिंदु पर लाकर छोड़ दे।

किसी भी रचना की लोकप्रियता क्या उस रचना की सार्थकता का भी प्रमाण है? यह अलग बहस का विषय है, मेरे विचार से इस विषय पर एक निष्पक्ष बहस साहित्य की नई परिभाषाएं और उसके सामाजिक सरोकार सामने ला सकती है।

'काला सूरज' नाटक के निर्देशक पंचानन पाठक अपनी संक्षिप्त भूमिका में लिखते हैं- ''सामाजिक सरोकारों से अलग हटकर नाटकों का मंचन करना मैं श्रम, समय और पैसे की बरबादी समझता हूँ। आज मनोरंजन के साथ-साथ दिशा निर्देश की जरूरत है। साथ ही वह यह भी लिखते हैं ''देश और समाज की विकृतियों, बीमार मानसिकताओं, भ्रष्टाचार, लूट खसोट, उत्पीड़न, शोषण आदि को दर्शाने वाली स्थितियों और दृश्यों का सन्तुलित कोलाज है।'' यह सही है पर सवाल फिर उठता है कि इस कोलाज का दर्शकों पर क्या प्रभाव पड़ता है? क्या स्थितियों से लड़ने की दिशा मिलती है या हतोत्साहित होता है? दर्शक जब नाटक देख कर प्रेक्षागृह से बाहर आता है तो उसकी मानसिक स्थिति क्या होती है। जो स्थितियां और दृश्य नाटक में संकलित किए गए हैं उनसे दर्शक पहले से ही परिचित है बल्कि यह

---

* *काला सूरज (मोहनसिंह) राजेश प्रकाशन, जी-62, गली नं. 5 अर्जुन नगर, दिल्ली-110 051*

कहना अधिक सटीक होगा कि वह उनका भुक्त-भोगी है। वह चाहता है कि इस घुटन और बदबू के वातावरण में कोई खिड़की खुले और परिवर्तन की हवा का ताज़ा झोंका आए, कोई रास्ता तो मिले संघर्ष का लेकिन नाटक के पात्र स्त्री-पुरुष जो संभवता 'आम आदमी' के प्रतिनिधि हैं, उन दोनों का संयुक्त अंतिम संवाद है।

दोनों-''जिस देश का चरित्र ही नहीं वह कितनी देर कायम रहेगा ? उसका आदि भी बुरा और अंत भी बुरा, उसका सुधार कभी नहीं हो सकता कभी नहीं।''

यह अंतिम संवाद सुनकर दर्शक जब प्रेक्षागृह से बाहर निकलता है तो नाटक के समस्त भयावह दृश्य कामरेड, बंधुजी, मीरी, दोली, गेली, फाइडी-सभी पहचानहीन चेहरे उसका पीछा करते हैं तो एक चीख अकस्मात उसके मुंह से निकलती है-बचाओ मैं मरना नहीं चाहता-पर तब उसकी इस चीख को सुनने वाला कोई नहीं होता, स्वयं लेखक भी नहीं।

मूर्ति-भंजन जहां लेखक का उद्देश्य होता है वहां नव-निर्माण का दिशा संकेत भी कहीं हो तो रचना का सन्तुलन बना रहता है अन्यथा वह घनघोर निराशा का कारण बनती है। कृति जब क्षेत्रीय-भाषा से राष्ट्रीय-भाषा में रूपान्तरित होती है तो उसके प्रभाव में भी विस्तार होता है। फलतः उसकी खूबियों और खामियों का आवर्द्धन भी हो जाता है। इस स्थिति मे मूल क्षेत्रीय-भाषा में जिन बिंदुओं को प्रायः नज़र अन्दाज कर दिया जाता है वह विराट रूप से आंखों के सामने उमड़ने-घुमड़ने तथा परेशान करने लगते हैं, न चाहते हुए भी उक्त विद्या से प्रकाशित अन्य कृतियों से तुलना की चेष्टाएं होने लगती हैं। भाषा-शैली का सवाल उठाया जाने लगता है। यदि अनुवाद कमजोर है या उपयुक्त नहीं है तो भी मूल कृति के साथ अन्याय होने की संभावनाएं बनी रहती हैं। पद्मा सचदेव डोगरी की श्रेष्ठ रचनाकार हैं पर वह श्रेष्ठ अनुवादक हरगिज सिद्ध नहीं हुई क्योंकि डोगरी भाषा के मुहावरों को जस-की-तस रखा गया है अथवा उर्दू-फारसी के अप्रचलित शब्दों को प्रयोग में लाया गया है जो पठनीयता में बाधा डालता है।

दूसरे नाटक समय वो समय के अनुवाद में डॉ. ज्ञानसिंह ने नाटक के साथ फिर भी न्याय करने की भरसक चेष्टा की है। एकालाप में क्योंकि रक्षा सूत्र का कोई बंधन या देश, काल की सीमाएं नहीं होतीं, इसलिए इसका फलक बहुत बड़ा और विस्तृत है जहां-कहीं व्यंग्य का प्रयोग हुआ है, वहां इसका प्रभाव बढ़ा है, जहां भावनाओं का ज्वार हावी हो गया है वहां एकालाप प्रलाप में परिवर्तित हो गया है मसलन- ''सिर्फ समय की पाबंदी है जिसका मैं कायल रहा हूँ आज भी हूँ'' और वही पात्र कहता सुनाई देता है ''नहीं यह कैसे हो सकता है, समय या तो आता है या जाता है, चलता है या टलता है। इसका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं। सभी पर अपना दबदबा अपनी धाक जमाने वाला समय वास्तव में अपने-आप में कुछ भी नहीं है, वह पराधीन है, पूरी तरह से आदमी का मोहताज है, उसका एहसानमंद है, यह तो आदमी है जो समय का एहसास करवाता है, क्रूर तो आदमी है।''

यह सोच नाटक के किसी पात्र की तो हो नहीं सकती जब तक लेखक उसमें अपनी दृष्टि और विचार का समावेश न करे। पारम्परिक मान्यता है कि समय बड़ा बलवान है और

मनुष्य उसके हाथ में एक कठपुतली है। समय जैसे नचाता है वह नाचता है। इसी को रहीम ने दिनन का फेर कहा है। साहिर ने लिखी-''वक्त की हर शै गुलाम वक्त का हर शै पे राज़, आदमी को चाहिए वक्त से डर कर रहे, कौन जाने किस घड़ी वक्त का बदले मिज़ाज।'' इस विरोधभास पर ही सम्पूर्ण नाटक का विस्तार और विकास हुआ है। नाटक का अंतिम संवाद-''मैं भी एक आदमी हूँ। उसी हाड़-मांस का बना आदमी जिए हाड़-मांस से आप बने हैं। मेरे भीतर भी सोच, शक्ति, तंत्र वैसा ही है। जैसा आपके भीतर में यह बात पक्के विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि सभी-खुराफातों की जड़ यदि कोई है तो वह आदमी ही है-आदमी बलवान है समय बेचारा है। आदमी की खुराफातों का मूक दर्शक कभी सत्यवादी हरिश्चन्द्र भी आज चार्ल्स शोभराज हैं।''

उपरोक्त उदाहरण मैंने इसलिए दिया कि इस में गहरा विरोधाभास है। हरिश्चन्द्र के युग में भी-वह व्यक्ति थे जिन्होंने उसका राजपाठ छीना-उसे श्मशान में करिन्दा बनाया और पुत्र के शव का आधा कफन उतारने पर मजबूर किया। चार्ल्स शोभराज के युग में भी-मोहन सिंह जैसे नाटककार हैं यानी अच्छे लोग हैं. जिनके बल पर विश्व में भारत का स्थान है। इसलिए अति साधारणकृत परिभाषा हतोत्साहित तो करती ही है, गलत परिणामों की ओर मोड़ कर विकास के सभी रास्ते बंद कर देती है। जो पुनः आदमी के लिए शुभ नहीं हैं, इसलिए जब हम आदमी को कोसते हैं तो यह स्पष्ट करना जरूरी हो जाता है कि हम किस आदमी की बात कर रहे हैं।

ooo